'श्रीराममन्त्रस्य वैदिकत्वम्'

श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

श्रीमदाचार्य पादाब्जे निधाय हृन्निकेतने ।

जाप्यस्यराममन्त्रस्य वैदिकत्वमुदीर्यते ॥ १ ॥

अथास्यषडक्षरात्मकस्य श्रीराममन्त्रस्य श्रद्धातिशयेनोपवर्णयद्भिर्महर्षिभिर्निरतिशयं माहात्म्यमुदटङ्कि । वेदेप्यस्यानवधिकमहिम्नस्तारकमनोरसकृन्महत्त्वमाम्नायत इति तद्विषयमवलम्ब्यायं प्रस्तूयते प्रबन्धः । १। नचान्येषु देवतान्तरोपास्तिप्रचुरतरेषुमन्त्रेषुसत्सु किमनेन वैशिष्ट्यमितिवाच्यम् । देवतान्यत्वफलान्यत्वाद्यभिदधानेभ्यो मन्वन्तरेभ्योऽस्त्येवास्य षडक्षरलक्षणस्य श्रीराममनोर्वैशिष्ट्यम् । तथाहि—प्रमाणतमपांचरात्रागमान्तर्गतबृहद्ब्रह्मसंहितायाम—

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यंगिरिजापतिः ।

जानातिभगवाँञ्छम्भु र्ज्वलत्पावकलोचनः ।

अर्थप्रकाशिकाबाल, कृष्णाचार्येणदेशिकान् ।

नत्वाश्रीराममंत्रस्य वैदिकत्वे विधीयते ॥

अ. प्र. टीका—जगद्गुरुभाष्यकारश्रीमद्रामानन्दमुनीन्द्रचरणकमलेभ्योनमः। शोभायुक्त आचार्य चरणकलको मैं अपने हृदयमन्दिरमें स्थापित करके जपकरनेयोग्य श्रीराममन्त्रका वैदिकत्व प्रकाशित करताहूं। इस षड़क्षर स्वरूप श्रीराममंत्रका श्रद्धाके साथ वर्णन करने वाले महर्षियोंने बहुत माहात्म्य अपने अपने ग्रन्थोंमे लिखाहै। और वेदमेंभी इस सर्वोत्कृष्टमहिमाशाली तारक श्रीराम मंत्रका बारंबार महत्व कहागयाहै। इसलिये श्रीराममंन्त्रके विषयमें यह प्रबन्ध प्रस्तुत कियाजाता है १. इसपर किसीको यहशंका नहींउठानी चाहियेकि, इस तारकमंत्रके अतिरिक्त दूसरे देवताओंकी उपासनासे पूर्ण औरभी अनेक मंत्र विद्यमानहैं तब इसमंत्रसे क्या विशेष लाभहै। देवताभेद और फल भेद आदि कहनेवाले दूसरे मंत्रोंसे इस षडक्षरात्मक श्रीराममंत्रमें अवश्य वैशिष्ट्यहै। इसी विषयका अब अग्रिम प्रमाणोंसे विवेचन कियाजाता है। परम प्रमाणभूत पंचरात्रशास्त्रके अन्तर्गतबृहद् ब्रह्मसंहितामें इस प्रकार श्रीराममंत्रके लिये लिखाहै कि जाज्वल्यमान अग्नि नेत्रधारी गिरिजापति भगवान शंभु इस श्रीराममंत्रके महत्वको जानते हैं।

इत्यादिपद्यैस्तथागस्त्यसंहितायाम्–

सुतीक्ष्णमंत्रवर्गेषु श्रेष्ठोवैष्णवउच्यते ।
गाणपत्येषुशैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः ॥
वैष्णवेष्वपिसर्वेषु राममंत्रःफलाधिकः ।
मंत्रराजइतिप्रोक्तः सर्वेषामुपकारकः ॥

इत्यस्याधिकफलप्रदत्वेनवैशिष्ट्यमाचष्टे । एवंवृद्धहारीतस्मृतौ ।

षडक्षरंदाशरथेस्तारकंब्रह्मगद्यते ।
सर्वैश्वर्यप्रदंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥
एतमेवपरंमंत्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ।
ऋषयश्चमहात्मानो मुक्ताजप्त्वाभवाम्बुधौ । ६ । २४१ ।
एतन्मंत्रमगस्त्यस्तु जप्त्वारुद्रत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मत्वंकाश्यपोजप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् । ६ । २४२ ।
एषवैसर्वलोकानामैश्वर्यस्यैवकारणम् ।
इममेवजपन्मंत्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः । ६ । २४४ ।

अ. प्र. टी.–इन पद्योंसे स्पष्ट वर्णन कियाहै । अगस्त्यसंहितामें भी । सुतीक्ष्ण ? समस्त गाणपत्य, शैव, शाक्त, और सौर मंत्रोंमें अभीष्टफलको देनेवाले वैष्णव-मंत्रही श्रेष्ठ माने जाते हैं । और वैष्णव मंत्रोंमेभी सबसे श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला श्रीराममंत्र ही है । यह अन्यसब मंत्रोका और विश्वकाभी उपकारक है । अत एव इस मंत्रको मंत्रराज, कहागयाहै । इस प्रकार इस श्रीराममंत्रको अधिक फल प्रदबताकर दूसरे मंत्रोंसे विशिष्टता दिखायी है । वृद्धहारीत स्मृतिमें–"भगवान् श्रीरामजीका यह षडक्षर 'राममंत्र' तारक ब्रह्म कहा जाता है । यह मंत्र मनुष्योंको सर्व प्रकारके ऐश्वर्योंको देकर सर्वमनोरथोंको पूर्ण करताहै । इस सर्वोत्कृष्टमंत्रको जपकर ब्रह्मरुद्रादिदेव और ऋषि महात्मा भवसागरसे पार उतर गये हैं । इसमंत्रका अगस्त्य मुनि जापकरके रुद्रत्वको प्राप्त कियेहैं । काश्यप ब्रह्मत्वको और कौशिकमुनि अमरेशताको प्राप्त हुएहैं । यह मंत्र सब प्राणियोंके ऐश्वर्य का कारण है । इस मंत्र के जपकरनेसे रुद्रत्रिपुरासुरके वधमें समर्थ हुएहैं ।

अनन्ताभगवन्मंत्रा नानेनतुसमाःकृताः ।
श्रियोरमणसामर्थ्यात्सौन्दर्याद्गुणगौरवात् । ६ । २४८ ।

इत्यादिवचनैरस्यैव सर्वातिशायिफलवत्त्वमुत्कृष्टत्वञ्चाभिदधौ । २। एवं शिव-संहितासनत्कुमारसंहितास्कन्दपुराणादिवचोभिरस्य महत्वमतिशेतेऽखिलामरमंत्रमहिम्न इति स्पष्टमेवशास्त्ररहस्यवेदिनाम् । तेषां कानिचन वचनान्यत्र निर्दिश्यन्ते ।

अहंदिशामितेमंत्र तारकंब्रह्मसंज्ञितम् ।
एषमन्त्रश्चविज्ञेयस्तारकश्चेतिसंज्ञितः ॥
कल्पद्रुमइतिस्फीतः साधकानांफलप्रदः ।
सर्वेषांमन्त्रवर्णानां श्रेष्ठोवैष्णवउच्यते ॥
तेषुवैष्णवमंत्रेषु राममंत्रफलाधिकः ।
विश्वरूपस्यतेराम! विश्वशब्दाहिवाचकाः ॥
तथैवमूलमंत्रस्ते विश्वेषांबीजमक्षयम् ।

अ. प्र. टी.-भगवान् के मंत्र अनन्तहैं परन्तु लक्ष्मीरमणके सामर्थ्यसे अन्य सुगमताओं से और अनेक गुणोंके गौरवसे इस मंत्रके समान अन्य कोई मंत्र नहींहै ।

इत्यादिवचनोंसे इसी श्रीराममंत्रको सर्वोपरि फल दायकत्व और सर्व श्रेष्ठत्व बताया गयाहै । इसी प्रकार शिव संहिता सनत्कुमार संहिता और स्कन्द पुराण आदिके वचनोंसे भी श्रीमंत्रराजका महत्व अन्य समस्त देवोंके मंत्रोंकी महिमाको अतिक्रमणकारी कहा गयाहै । यह मंत्र शास्त्रके रहस्यको जानने वाले खूब जानतेहैं । इनके कुछ वाक्य यहांपर उद्धृत कियेजातेहैं । शिवजी पार्वतीजीसे कहतेहैं, कि मैं तुम्हें ब्रह्मसंज्ञक तारकमंत्रका उपदेश देताहूं. इसमंत्रकी तारकमंत्र ऐसी संज्ञाहै । यह मंत्र कल्पवृक्षके समान साधक जनोंको फलदेनेवाला है । और समस्त मंत्रोंसे वैष्णवमंत्रही श्रेष्ठ कहे गये हैं । और उन वैष्णव मंत्रों में भी श्रीराम-मंत्रही अधिक फलको देनेवालाहै । हे राम ? आप विश्वरूपहैं अत एव विश्वके समस्त शब्द आपके वाचक हैं । और इसी प्रकार आपका मूलमंत्र जो श्रीराम मन्त्रहै वह समस्त मन्त्रोंका और शब्दोंका भी मूलहै ।

अचिन्त्योयंमहाबाहो मंत्रश्चिन्तामणिर्विभोः ।
विहायैनंविमूढात्मा ततश्चेतश्चधावति । इति ।

एभिर्वचननिचयैर्निरस्तसमस्तविशयैर्भ्रमप्रमादलिप्साद्यशेषदोषादूषितान्तः करणैः शिष्टविशिष्टपरिवृढरपास्तहेयगुणानवधिककल्याणगुणार्णवभगवच्छ्रीरामरहस्यवेदिभिरा- ञ्जनेयाब्जयोनिहैरण्यगर्भपराशरद्वैपायनादिभिश्चास्यैव स्वीयनिःश्रेयसैकसाधनतया साद- रपरिगृहीतत्वम् । ३ । नन्वागमस्मार्तप्रमाणैरवश्यमस्य मनोरनितरसाधारणफलातिशया- धायकत्वमुद्धुष्यते । नचाम्नायिकैःकैरपिप्रमाणैस्तत्रत्रैवर्णिकानामेवाधिकारात । अस्मिं- स्तुचातुर्वर्ण्यस्याप्यधिकारः 'सर्वेषामधिकारोवै ज्ञातव्योदैशिकोत्तमैः' इत्यादिवचनैरव- गम्यत इतिकुतोऽस्यवैदिकत्वं कुतस्तराञ्चाम्नायवचोभिरर्चितत्वमिति चेदनभिज्ञोभवान्मंत्र- शास्त्रस्य । यथैतत्कुम्भसंभवदुरोगह्वरगर्भगुम्फितं शुद्धमपित्वदीयशंकातंककलंकपङ्किलं सा- मंजस्यमुपेयातथेदमग्रिममभिधास्यमानं सावधानमाकर्णय । ४ ।

अ. प्र. टी हे महाबाहो ! यह मन्त्रचिंतामणि अचिन्त्य (अतर्कित) शक्तिवालाहै। इस मन्त्ररूपचिन्तामणिको भूलकर मूढ मनुष्य अन्यवस्तुओंकी लिप्सासे जहांतहां दौड़ताहै इन बचनोंसे, समस्त शंकाओंसेरहित, भ्रमप्रमाद और लिप्सा आदि समस्त दोषोंसे रहित शुद्ध अन्तःकरणवाले सज्जन पुरुषोंमें विशेष समादरणीय, और निन्द्यगुण- रहित तथा अनन्तकल्याणगुणसागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके रहस्यको जाननेवाले श्रीपवनकुमार ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, और द्वैपायनादिमहर्षियोंने इसी श्रीरामन्त्रको मोक्षका एक साधनमानकर प्रेमके सहित ग्रहण किया है ॥ ३ ॥ अबयहां शङ्का यह होती है कि-पाञ्चरात्रआदि आगमोंसे और स्मृति पुराणोंसे तो अवश्य इस श्रीराम मन्त्रको सब मन्त्रोंसे अधिक फलदायी बताया गया है। परन्तु किसी भी वैदिक- प्रमाणसे इसका वर्णन अथवा महत्व नहीं जाना गया। क्योंकि-वेदमें और वैदिक कर्म कलापमें त्रैवर्णिकका ही अधिकार देखा जाताहै। और इस श्रीरामन्त्रके तोचारों वर्ण अधिकारी हैं। यह बात "सर्वेषां" इस श्लोकसे स्पष्ट ही ज्ञात होती है, तब इस मन्त्रको कैसे वैदिक माना जावे ? और किस प्रकार वेद भगवानकी इस मन्त्रमें प्रवृत्ति कही जासकती हैं। इस शङ्काका अब समाधान किया जाता है। आप मन्त्र शास्त्रके अनभिज्ञ हैं अतएव ऐसी शंका करते हैं। जिस प्रकार यह सब आपके हृदय गर्भमें समाया हुआ शुद्ध होते हुए भी आपकी शंका रूप कलंक पंकसे पंकिल हुआ शुद्धताको प्राप्तहो, उसी प्रकार हमयह आगेका विवेचन करतेहैं। सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥

अत्रेदमेव प्राग्विचिन्त्यते यत्किन्तावद्भवदभिमतं वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकम् वेदानुकूलप्रमाणप्रतिपाद्यत्वम् १ वेदोपबृंहणेतिहासपुराणप्रतिपाद्यत्वम् २ वेदविहितत्वविशिष्टकृतिसाध्यत्वम् ३ वेदोदितफलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वम् ४ वेदैकसमधिगम्यत्वम् ५ वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वम् ६ वेदांशमन्त्रमात्रदृष्टार्थकत्वम् ७ वेदोभयभागदृष्टार्थकत्वम् ८ वेदपदाभिधेयार्थसम्बन्धित्वम् ९ वेदोच्चरितानुपूर्वीकत्वं वा १० एष्वेवार्थेषु जिज्ञासुजनाकांक्षितस्य वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकस्यान्यतमार्थेनिर्भरत्वम्। तत्र विशिष्टबोधं प्रति तदवच्छेदकमते हेतुतया तद्विषय एव तावत्प्रथमं विविच्यते। लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरिति न्यायविदो वदन्तस्तदुभयव्यतिरेकेण न किञ्चिदपि प्रसिद्धिपदमध्यास्त इति मन्वते।

अ. प्र. टी. यहांपर पहले यही विचार कियाजाताहै कि 'आपका अभिमत 'वैदिकत्व' क्या है ? इसके लिये यहां १० कल्प किये गये हैं वह इस प्रकार हैं।

वेदके अनुकूल जो अन्य प्रमाण हैं (जैसे कि स्मृति, इतिहास, पुराण, दर्शनशास्त्र, तथा अन्य आप्तोंके प्रणीत ग्रंथ) उनसे जिसका प्रतिपादन किया जाता हो (अर्थात् वेदमें हो या न हो) उसे वैदिक कहा जासकताहै। १ वेदके उपबृंहण केवल इतिहास और पुराणसे जिसका प्रतिपादन किया जाताहो। २ वेदसे विहित हो और अर्थीजनके प्रयत्नसे साध्यहो। ३ वेदमें कहेगये जोफलहैं उनकी कामनावाले अर्थीकी प्रवृत्तिका विधेय जो हो। ४ एक मात्र वेदसे जिसका ज्ञान होता हो। ५ वेदके एक भाग ब्राह्मण भागमें देखे गये प्रयोजन के लिये जो अधिकृतहो। ६ वेदका अंशजो केवल मंत्रभागहै उससे जिसका प्रयोजन देखागयाहो। ७ वेदके उभय भागमें जिसका प्रयोजन देखा गया हो ८ वेद पदसे कथित जो अर्थ तत्सम्बन्धी जो हो। ९ वेदमें जिसकी आनुपूर्वी साक्षात् कंठरवसे कही जाती हो। १०

इन्ही १० दश अर्थोंमे जिज्ञासुजनोंसे आकांक्षित वैदिक पदके अर्थका समावेशहै। अबएक ऐसा नियमहैकि यदि विशेषण युक्तकाज्ञान करनाहोतो प्रथम उसके विशेषणका ज्ञान करना आवश्यकहै,, इसलिये विशेषण ज्ञानका विषयजो वेद है उसीका प्रथम विवेचन कियाजाताहै। "प्रत्येक वस्तुकी सिद्धि उसके लक्षण और प्रमाणसे हुआ करती है" इस प्रकार कहते हुए न्याय शास्त्रविद् "लक्षण और प्रमाणके विना किसीभी वस्तुकी सिद्धि नहीं होती" यह मानतेहैं।

तस्माद्वेदलक्षणमादौ वाच्यम्, तदेव तु न संभवति। मन्त्रब्राह्मणान्यतरशब्दसमूहो वेद इति चेन्न। मन्त्रब्राह्मणप्रकारयोरद्याप्यनिश्चयात्। प्रमाणतया गृहीतेषु प्रत्यक्षानुमानागमेष्वन्तिमस्य वेदत्वमित्यपि नानवद्यम्। स्मृत्यादावतिप्रसंगात्। अपौरुषेयत्वविशिष्टवाक्यत्वमेवेत्यप्यविचारसहम्। भगवदनुभवाहितकृतिजन्यत्वेन पौरुषेयत्वात्। न च विग्रहरहितत्वादपौरुषेयत्वमिति वाच्यम्। भगवतोऽपि "अग्निर्मूर्धा [illegible]" "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादिपरश्शतैः प्रमाणैरखिलानुग्रहविग्रहसम्बन्धित्वात्। कर्मकृतकलेवरकर्तृकत्वाभावादपौरुषेयमिति चेदिदमनवसेयम्। कर्मात्तकलेवरधारिभिरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पाद्यत्वाम्नानात्। "ते तपोऽतप्यन्त, तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा असृज्यन्त, अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः" इति।

अ. प्र. टी. इस लिये प्रथम वेदका लक्षण कहना चाहिये। किन्तु वह असंभवसा प्रतीत होता है। यदि मन्त्रशब्दसमुदायको अथवा ब्राह्मण शब्दसमुदायको वेद माना जावे तो यह ठीक नहीं क्योंकि "किस लक्षणयुक्त शब्द समुदायको मन्त्र अथवा ब्राह्मण कहना" इसका तो अभीतक निर्णयही नही हुआ है।

प्रमाणरूपसे माने गये प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम इन तीनोंमे अन्तिम आगम प्रमाण को ही वेद जानें, यह पक्षभी निर्दोष नहीं है। क्योंकि यह लक्षण स्मृति (और आधुनिक वाक्यों)में चले जानेके कारण अतिव्याप्ति-दोषग्रस्त है। अपौरुषेय (पुरुषोच्चरित नहीं) ऐसा वाक्यभी वेदका लक्षण विचारसे संगत नहीं है। क्योंकि भगवान्के अनुभव सहितजो उनका प्रयत्न है उससे जन्य होनेके कारण पौरुषेयही है। कदाचित् यह कहा जावेकि भगवान्से वेदकी उत्पति होने परभी वह भगवान् अशरीरी होनेके कारण शरीरजन्य न होनेसे अपौरुषेयही है। तो यह कथन भी ठीक नहीं, भगवान् कोभी 'अग्नि मस्तक है, इत्यादि अर्थवाली श्रुतियोंसे औरभी अनेक प्रमाणोंसे अखिल प्राणियोंके ऊपर दयाधारी शरीर युक्त कहागया है। 'कर्मकृत शरीर धारीसे वेद प्रणयन नहीं किया गया अतः वहअपौरुषेयही है यह कहनाभी अयुक्त है। क्योंकि कर्मके परवशहोकर शरीर धारण करने वाले अग्नि, वायु, और आदित्य नामक देवोंसे वेदोंकी उत्पत्ति वेदोंमेही कही गयीहै। श्रुतिका अर्थ इसप्रकार से है-उनतीन देवोंने तपकिया, उनके तपकरनेसे तीन वेदोंकी उत्पत्ति हुई। अग्निसे ऋग्वेद वायुसे यजुर्वेद और आदित्यसे सामवेद।

अत एव "न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः" (सां. द. ५ । ४४) इति कपिलवचोऽपि संगच्छते। एवं प्रमाणमपि वेदपदाभिधित्सिते वस्तुनि न किञ्चिदुपलभ्यते। "ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं भगवोऽध्येमि" इत्यादिवाक्यानितु विवादविषयीभूतत्वादात्माश्रयदोषाक्रान्तत्वेनाश्रद्धेयप्रमाणत्वात्। एवंच लक्षणप्रमाणविरहिणो वेदपदवाच्यस्य गगनकुसुमायितत्वेन न प्रेक्षावद्बुद्धिगोचरत्वमिति । ५ ।

तदेतच्छंकाकलङ्कितमनसां दुर्मेधसामापातरमणं वचो वैदिकाचाररूढैरनादरणीयम्। अस्मत्पूर्वजैर्मनुयाज्ञवल्क्यवसिष्ठनारदवाल्मीकिपराशरव्यासशुकादिभिः सर्वस्याप्यर्थस्य स्वकीयतन्त्रेषु सुदृढं निर्णीतत्वात् । यदुक्तं–वेदलक्षणमसंभवि तदयुक्तम् । मंत्रब्राह्मणात्मकत्वस्यैव तल्लक्षणस्य वक्तुं शक्यत्वात् । अत एव महामुनिर्जैमिनिः "तच्चोदकेषु मंत्र" (२-१-३२) इति मंत्रलक्षणं विलक्षणमभिधाय "शेषे ब्राह्मणशब्दः" (२।१।३३)

अ० प्र० टी०—अत एव "उत्पत्ति श्रुति होनेके कारण वेदोंकी नित्यता नहीं कही जासकती" यह सांख्यकारका वचनभी संगत होताहै। इस प्रकार वेदका लक्षण नहीं बन सकता। और वेद पदसे कहेजानेवाली वस्तुमें कोई प्रमाणभी नहीं मिलता । 'ऋग्वेद पढता हूं' 'यजुर्वेद पढताहूं' इत्यादि वाक्य छान्दोग्य आदि उपनिषदोंमें विद्यमानहैं परन्तु वहतो साधनीय ग्रन्थोंके अन्तर्गत होनेके कारण आत्माश्रय दोष संयुक्त होनेसे उनको प्रमाण भूतमानना श्रद्धाके बाहरहै। इसलिये लक्षण और प्रमाणसे रहित वेदपदार्थको आकाश कुसुमके समान होनेसे वे चतुरमनुष्यकी बुद्धिके विषय नहीं हो सकते।

अ० प्र० टी.। इस शंकासे कलंकित मनवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके ऊपर सेही रमणीय वचन वैदिक आचारमें प्रसिद्ध शिष्ट जनोंका अनादरणीयहैं। क्योंकि हमारे पूर्वज मनु याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, नारद, वाल्मीकि, पराशर व्यास और शुक आदि महर्षियोंने सब अर्थोंका अपने अपने ग्रन्थोंमें बहुत अच्छी प्रकारसे निर्णय कियाहै। जो कहतेहैं कि 'वेदका लक्षण असंभवहै, यह ठीक नहीं। मंत्रात्मक अथवा ब्राह्मणात्मकही वेदका लक्षण कह सकते हैं। इसी लिये महामुनि जैमिनिने 'प्रेरणात्मक जो वाक्यहै' वही मंत्रहै ऐसा विलक्षण मंत्र लक्षण कहकर बाकी वेद भागको ब्राह्मण कहा जाताहै ।

इत्यभ्यर्णमेव ब्राह्मणलक्षणमसूत्रयत् । यद्युभयोर्वेदपदेननोपादास्यत्तदाशेष इति कथनस्यानर्थक्यमेवाभविष्यत् । नहि स्वरूपेण भिन्नयोःस्वतंत्रयोरन्यतरस्मिन्नस्यायं शेष इति व्यवहरन्तिविशेषज्ञाः । तथाचात्र शबरस्वामिनः "अथ किं लक्षणंब्राह्मणं, मंत्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदस्तत्रमंत्रलक्षण उक्तेपरिशेषसिद्धित्वादुब्राह्मणलक्षणमवचनीयम् मंत्रलक्षणेनैवसिद्धम् । यस्यैतल्लक्षं नभवति तदुब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धंतद्ब्राह्मणम्" इति स्पष्टमभिदधुः । एवं पार्थसारथिमिश्रैश्शास्त्रदीपिकायां स्वकण्ठरवेणैव "द्विविभागस्य वेदस्यैकभागस्य मंत्रात्मकस्यलक्षणमुक्तंतत्प्रसंगात्"एतद्ब्राह्मणान्येव पञ्चहवींषि "इति वेदप्रयुक्तस्य ब्राह्मणशब्दस्यार्थपरिज्ञानार्थं ब्राह्मणलक्षणाभिधानम् अवशिष्टं ब्राह्मणमिति " इत्युदीरितम् । ६ । एवं यज्ञपरिभाषाप्रकरणे भगवतापस्तम्बेनापि "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनाधेयम् इति स्पष्ट मुक्तम् । ७ ।

अ० प्र. टी. । "ऐसा तुरतही ब्राह्मण लक्षणके लिये सूत्र पढा। यहां पर यदि दोनों भागोंका वेद पदसे ग्रहण नहोता तो 'शेष' इस कथनका वैयर्थ्य होजाता। स्वरूपसे जो दो पदार्थ स्वतन्त्र होकर भिन्नहोतेहैं उन पदार्थोंमें यह इसका शेष है ऐसा व्यवहार बुद्धिमान मनुष्य नहीं करते। अत एव यहां पर शबर स्वामीजी यह लिखतेहैंकि-ब्राह्मणका क्यालक्षणहै? मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंको वेद कहाजाताहै इनमें मंत्रका लक्षण कहेने पर बाकी जो बच गयावह ब्राह्मणहै।अतः ब्राह्मणका लक्षण नहीं कहना चाहिये। वहांतो मंत्रका लक्षण करनेसेही सिद्धहोचुका कि जिसका यह लक्षण नहीं है वह ब्राह्मणहै "यह उन्होने स्पष्टही कहाहै। इसी प्रकार शास्त्रदीपिका नामके ग्रंथमें पार्थसारथि मिश्रनेभी कहाहैकि "दो विभाग वेदकेहैं इनदोनोंमेंसे मंत्रका लक्षण कहागया। इसी प्रसंग में "एत दूब्राह्मणान्येव, इस श्रुतिमें ब्राह्मणपद आयाहै इसके अर्थ परिज्ञानके लिये ब्राह्मण लक्षण कहागयाहैकि अवशिष्ट वेदभाग ब्राह्मणहै । ६ । इसी प्रकार यज्ञ परिभाषा प्रकरणमें आपस्तम्बनेभी मंत्र और ब्राह्मणका वेद नामहै ऐसा स्पष्टही कहा है। ७।

एवं दैवतकाण्डे त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमेपादेवाग्वस्तुनिर्वचनावसरे "मंत्रःकल्पोब्राह्मणं चतुर्थी व्यावहारिकीतियाशिंका इतियास्काचार्याः 'मंत्रतात्पर्यार्थप्रकाशको वेदभागो ब्राह्मणम्, इतिच तद्भाष्यकाराः।

अत एव च नैघन्टुककाण्डे प्रथमाध्यायस्यप्रथमेपादेवैदिकभागरूपमंत्रमुद्दिश्य "पुरुष वियाऽनित्यत्वात्कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे,, इति निरुक्तावुक्तम्॥८॥ तथाच 'धर्माख्यंविषयंवक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम् ., इतिश्लोकवार्तिकवचनान्मीमांसावसेयत्वमेव धर्मस्येतिनिश्चयान्मीमांसयाचोभयभागस्यवेदत्वं सुस्पष्टमभिहितम् । एतदुक्तंभवति । मंत्रब्राह्मणात्मकवेदे केषुचिदभिधायकेषु वाक्येषुमंत्रइतिसमाख्या सम्प्रदायविद्भिर्व्यवह्रियते 'मंत्रानधीमह, इति। तद्व्यतिरिक्तभागेतु ब्राह्मणशब्दस्तर्व्यवहृत इति। एतल्लक्षणरक्षणात्कल्पान्तराण्यस्मिन्नुपन्यस्तानि निराकृतान्येव वेदितव्यानि। यःकिलस्थूलमतिर्वेदानाम्पौरुषेयत्वमनित्यत्वंच ब्रूते सचानाघ्रात वेदशास्त्र सम्प्रदायरहस्य उपहस्य एव साम्प्रदायिकविपश्चित्परिषदि ॥९॥ तथाहि आम्नायस्यापौरुषेयत्वं 'उक्तंतु शब्दपूर्वत्वम्, (मी. १।१।२९)

अ० प्र० टी०। इसी प्रकार निरुक्त के दैवतकांडके त्रयोदशाध्यायके प्रथम पादमें वाक्पदार्थके निर्वचन समयमें मंत्र० इत्यादि यास्क महर्षिने कहा है और "मंत्रके तात्पर्यको प्रकाशित करने वाला वेदका भाग ब्राह्मण कहा जाता है" ऐसा निरुक्त भाष्य कारने कहा है। इसीलिये नैघन्टुककाण्डके प्र. अध्यायके प्रथमपादमें वेदके एक भाग मंत्रको लेकर 'पुरुष विद्या; सादि निरुक्तमें कहा है।८। अतएव "धर्मरूप विषय कहने के लिये मीमांसाका प्रयोजन है,, इस कुमारिल भट्टके वचनसे यह जाना जाता है कि धर्मका यथार्थज्ञान मीमांसासेही हो सकता है। और मीमांसा शास्त्रने मंत्र और ब्राह्मण दोनोंको वेद माना है। यह तात्पर्य निकला कि, मंत्र और ब्राह्मण रूप वेदमें अभिधायक वाक्योंमें 'मंत्र, यह समाख्या साम्प्रदायिकोंने व्यवहृत की है जैसे 'मंत्रोकों पढते हैं, यही बोला जाता है और उससे व्यतिरिक्त-भागमें ब्राह्मण, शब्दका व्यवहार कियाहै। इस लक्षणके रखनेसे दूसरे सब कल्पोंका खण्डन होजाता है।

जो स्थूलबुद्धि मनुष्य वेदोंको पुरुषके बनाये हुए (पौरुषेय) मानताहै और अनित्य भी कहता है वह वेदशास्त्र और सम्प्रदायके रहस्यको नहीं जानता। और साम्प्रदायिक पण्डितोंकी सभामें उपहासका पात्र है। इसी बातको कहा जाता है। 'वेद अपौरुषेयहै, इस बातको 'उक्तंतु, इस मीमांसा सूत्रमें और

'अत एवच नित्यत्त्वम्, (ब्र. सू. १।३।२९) इति पूर्वोत्तरमीमांसयोर्महता प्रबन्धेन व्यवस्थापितत्वाच्च केनचिदपोदितुं शक्यम्।१०।

यद्याम्नायः केनचिज्जन्योऽभविष्यत्ततोऽवश्यमध्येतृपरम्परया तथागतादिवत्तदुपज्ञमद्योऽप्यस्मरिष्यत्। न च कर्तुर्विस्मरणं सम्भवदुक्तिकम्। नचाद्ययावद्वेदकर्तुः स्मरणं क्वचित्केनचित्कृतचरम्। तस्मादयं स्मृतिविरहःखपुष्पायमाणस्य कर्तुरभावमवगमयति ॥११॥

न च तैत्तिरीयं, कौथुम, मित्याद्याख्यावशात् तत्तदाम्नायशाखाजनकतयाऽखिलस्याम्नायस्यापि पौरुषेयत्वमेव। तथा चायं प्रयोगः वेदवाक्यानि,पौरुषेयाणि वाक्यत्वात्कालीदासादिवाक्यवत्। किञ्च 'बबरःप्रावाहणिरकामयत, इत्यादि जनिमृतिधर्मजुषामभिधानाचानित्यत्वमपि। नह्य नादिनिधनाम्नायेऽ नित्यानामर्वाचीनानां वर्णनं युक्तिसहम्। तस्मात्पौरुषेयत्वमेव वेदानामिति वाच्यम्। वैदिकस्य शब्दस्य तदर्थस्य तत्सम्बन्धस्य च शास्त्रकारैर्नित्यत्वेनाभिधानात्।

अत एव च, इत्यादि वेदान्तसूत्रमें और बडे प्रबन्धसे इन सूत्रोंके भाष्यमें व्यवस्थापित किया गया है। यह कीसीसे हटाया नहीं जासकता।१०। यदि वेद किसीसे उत्पादित किया गया होता तो अध्येतृ परम्परासे बुद्धादि प्रणीत ग्रन्थोंकी तरह उस पुरुषसे लेकर अज्ञनेभी उसका स्मरण किया होता। कर्ताका विस्मरण होना संभवित नहीं है। वेद के बनाने वालेका आजतक कहीं भी कीसीने स्मरण नहीं किया। इस लिये यह स्मरणका अभाव आकाश पुष्पके सदृश कर्ता के अभावकोही सिद्ध करता है।११।

अ० प्र० टी०। यहांपर यह शंका हो सकती है कि, तैत्तिरीय, कौथुम, आदि अनेक वेदोंके नाम हैं। यह नाम तित्तिर और कुथुमके रचयिता होनेसेही हो सकते हैं। इस लिये तत्तद्वेदकी शाखा के रचयिता जब सिद्ध हो गये तो इसीसे समस्त वेदको पौरुषेय (पुरुषोंका बनाया हुआ) मानलेंगे। और यह अनुमान होगा कि, वेद वाक्य पौरुषेय हैं वाक्य होनेके कारण आधुनिक कालीदास आदि के वाक्योंके समान, इस अनुमानसे वेदमें पौरुषेयत्वसिद्ध होगा। इसी प्रकार बबर आदि उत्पत्ति और मरण धर्म वालोंके नाम वेदमें आते हैं इससे वेद अनित्यभी कहा जा सकता है। क्योंकि अनादि वेदमें सादि नाम नहीं हो सकते। इस लिये वेद पौरुषेयही है।

अत एव च औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेनसम्बन्ध इत्यादिजैमिनीयसूत्रम् औत्पत्तिक इतिनित्यंब्रूमः, इतिच शाबरभाष्यं संगच्छेते। नचात्र सम्बन्धमात्रस्यैवनित्यत्वमुच्यतइतिसाम्प्रतम्। सम्बन्धस्यनित्यत्वं सम्बन्धिनित्यत्वमन्तरेणानुपपन्नंसत्सम्बन्धिनित्यत्वमुपस्थापयतीत्येष एव समीचीनःपन्थाः।१२।'बबरःप्रावाहणिः,इत्यादिवाक्यैरपिनशक्यतेऽनित्यतामाम्नायस्य साधयितुम्। नह्यत्र कश्चिन्मरणधर्मापुमान् विवक्षितो येन वेदस्योत्पत्तिमत्वंस्यात्। केवलमत्र शब्दसामान्यमुक्तम्। प्रवहणशीलस्य वायोरपिग्रहणसम्भवात्। एतदेव "आख्या प्रवचनात्। परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रमितिसूत्राभ्यांप्रत्यपादि महामुनिर्जैमिनिः। इममेवार्थं श्रीमदाचार्यचरणाः "गतकल्पीयवेदस्य तादृशानुपूर्वीमत एवास्यां सृष्टावपि संस्मृत्योपदिष्टत्वादपौरुषेयत्वमप्यक्षतम्,, इत्यादि श्रीमदानन्दभाष्येऽधिदेवताधिकरणं प्रतिपादयाञ्चक्रुः। विस्तरेणायं विषयोऽस्माभिः स्वरचितवेदार्थरक्षायाम्प्रत्यपादीति तत एव विशेष जिज्ञासुभिरवगन्तव्य इति दिक् ।१३।

यह शंका ग्रंथ है। अब इसका समाधान कियाजाता है। वैदिक शब्द उसका अर्थ और शब्दार्थका सम्बन्ध यह सब शास्त्रकारोंने नित्य कहे हैं। इसी लिये "औत्पत्तिक,, इत्यादि जैमिनीय सूत्र और उसी सूत्रका भाष्य यह दोनों यथार्थ रूपसे संगत होते हैं। इस सूत्रमें और इसके शाबर भाष्यमें सम्बन्ध मात्रकोही नित्य कहा है यह नहीं मानना चाहिये। क्योंकि दोनों सम्बन्धी पदार्थोंके नित्य हुए विना उनका सम्बन्ध मात्र नित्य नहीं होसकता। इससे दोनों सम्बधियोंकाभी नित्यत्व सिद्ध होताहै यही समीचीन मार्गहै ।१२। बबर, इत्यादि वाक्योंसे भी अनित्यत्व सिद्ध नहीं कर सकते। बबर नामक कोइ जन्म मरणवाला मनुष्य यहां विवक्षित नहीं है जिससे वेदको अनित्य कहा जावे। यहां तो केवल शब्द सामान्य कहा है। अथवा प्रवहणशील वायुका भी बबर शब्दसे ग्रहण हो सकता है। इसी आशयको 'आख्या प्रवचनात्' और 'परन्तु०' इन दो सूत्रोंसे जैमिनिने कहा है। और इसी अर्थका भगवान श्रीरामानन्दाचार्य चरणोंने देवताधिकरण के आनन्द भाष्यमें प्रतिपादन किया हैकि, 'गत कल्पके आनुपूर्वीवाले वेदको इस कल्पकी सृष्टिमेंभी स्मरण करके भगवान उपदेश करते हैं। अतः अपौरुषयत्वभी सुरक्षितरहा, इत्यादिरूपसे वहां लिखाहै। इससेभी अधिक विस्तार से यह विषय मूलग्रंथकार अस्मद्गुरुचरण रचित वेदार्थरक्षामें प्रतिपादित है। इस लिये विशेष जिज्ञासुओंको वहां परही देखना चाहिये। यहां तो केवल दिग्दर्शन है ।१३।

एवञ्चाम्नायस्यापौरुषेयत्वमङ्गीकुर्वत्स्वखिलसम्प्रदाचार्येषुयः कि-
लगेहेनर्दीस्वदुराशयाहितकुमतितया वेदानाम्पौरुषेयत्वमभ्यधात् स-
साम्प्रदायिकरहस्यानभिज्ञएवेतिसाम्प्रदायिकैर्दूरतः परिहर्तव्यइत्युप-
रम्यते प्रासङ्गिकविवेचनात् ।१४। अथाधुना दशविधकल्पविभक्तस्यवै-
दिकपदवाच्यस्यादिमेकल्पेऽस्य श्रीराममंत्रस्य सामञ्जस्यमुपपाद्यते ।
तथाहि–वेदानुकूलंयत्प्रमाणजातं तत्प्रतिपाद्यत्वमेव प्रथमंवैदिकत्वम् ।
तच्च श्रीराममनोर्वेदाविरोधिस्मृतीतिहासपुराणसदाचारादिभिः स-
म्यक् प्रतिपाद्यमानत्वादक्षतम् । वेदानुकूलस्मृतीनाञ्चप्रामाण्यं शास्त्र-
कारैर्व्यवस्थापितमेव अत एव 'अष्टकाः कर्तव्या' इति स्मृतिप्रतिपादित
धर्मस्यानुष्ठानं वैदिकैः क्रियते । तथाच जैमिनीयं सूत्रम् "अपिवा
कर्तृसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात्,, ।

इस प्रकार वेदकों सब आचार्यों के अपौरुषेयमानने परभी जो मनुष्य अपनी दुर्भावनावशात् पौरुषेय कहते हैं वह साम्प्रदायिक रहस्यके अनभिज्ञ है अतः सम्प्रदाय प्रेमियोंको उन्हें दूरसे हीत्याग करदेना चाहिये। अब इस प्रासंगिक विवेचनसे उपरत होकर प्रकृतकाही अनुसरण किया जाताहै। पूर्वमें जो दश प्रकारसे वैदिक पदका अर्थकिया गया है उनमेंसे प्रथम कल्पमें श्रीराम मंत्रका समंजस कहा जाताहै। प्रथम कल्पमें वैदिकत्वहै-वेदानुकूल जितनेभी प्रमाण हैं। उनसे श्रीराम मंत्रको प्रतिपाद्यत्वहै। वेदके अविरुद्ध स्मृति, इतिहास, पुराण, और सदाचार आदि हैं उन सबसे श्रीराम मंत्र वर्णन किया गया है। इसलिये प्रथम प्रकारसे वैदिकता श्रीराम मंत्रमें भली प्रकारसे है। वेदानुसारिणी स्मृतियोंका प्रामाण्य शास्त्रकारोंने स्थापित ही किया है। अत एव 'अष्टका, आदि स्मृतिप्रदिपादित धर्मका पालन समस्त वैदिक करते हैं। इसीका समर्थन 'अपि वा, इस सूत्रसे जैमिनिने किया है। हम वेदको छोडकर स्वतंत्र रूपसे स्मृतिको प्रमाण नहीं मानते जिससे कि मनुष्य स्वभाव सरल भ्रान्ति और प्रमाद आदि दोष आजानेके कारण स्मृतियोंके प्रमाण में संदेह होजावे। किन्तु हमतो वेदार्थके पूर्ण ज्ञाता त्रैकालिक ज्ञानवान् मनु, अगस्त्य, हारित, पराशर, आदि महर्षियोंकी स्मृतियोंको ही भ्रान्ति आदि

इति। नहि वयं स्वातन्त्र्येण स्मृतेः प्रामाण्यमभ्युपगच्छामो येन भ्रान्तिप्रमादादिपुंदोषदूषितत्वेन विचिकित्सितमेव प्रामाण्यं स्यात्। वयन्त्वधिगतवेदार्थानां मन्वगस्त्यहारीतपराशरादिमहर्षीणां स्मरणमेव भ्रान्त्यादिदोषापेतं ब्रूमः। न तु चैत्यवन्दनादिविधायकानां वेदार्थबोधशून्यानां सौगतशाक्यौलूक्यादीनां भ्रान्तिमत्स्मरणम् ।१५। इदन्तु युक्तम्। सहस्रं सामशाखा, एकशतमध्वर्युशाखा एकविंशतिशाखंबाहूवृच्यमिति शाखाप्रमाणस्य वैदिकपारम्पर्येण स्मरणान्न शाखाधिक्यं शक्यमुत्कल्पयितुंमन्त्राणान्तु केषाञ्चिदुच्छिन्नाध्येतृपारम्पर्य्यादुत्सादनमेकत्र सतामपि शाखान्तरेऽधिगतत्वञ्च शक्यते वक्तुम्। नत्वङ्गवाक्योत्सादनमन्यथा तदंगवैकल्यस्य संशयाधायकतया न स्यात्साध्यवसाया प्रवृत्तिः कस्मिन्नपि कर्मणि कर्मठानाम्। पश्यामश्चाहर्दिवं वैदिकानां सम्प्रतिपन्नां प्रवृत्तिमितिनाङ्गवाक्योत्सादनमाम्नायस्य। १६। तथाच वेदाविरोधिस्मार्तैर्वचोभिः केचिद्व-

---

दोषोंसे रहित कहते है। चैत्यवन्दनादि विधान करनेवाली और वेदार्थ बोधसे हीन सुगत, शाक्य और उलूक आदिसे प्रणीत स्मृतियोंको निर्दुष्ट नहीं मानते। यहां पर यह अवश्य विचार करने योग्य है। सामवेदकी एक सहस्रशाखा हैं। यजुर्वेद एक शत और एक शाखी है और ऋग्वेद इक्कीश शाखावाला है, इस प्रकार वैदिक ब्राह्मण परम्परासे यह वात स्मरण होती चली आयी है। अतः शाखाओंमे आधिक्य नहीं कहा जासकता। मन्त्रोंमे अध्ययनपरम्परा के भ्रष्ट होनेके कारण एक शाखामें पाठ होते हुएभी वहां न पढ कर शाखान्तर में उसका अध्ययन कह सकते है। परन्तु अंग वाक्यका विनाश नहीं कह सकते। क्योंकि किसी अंगके न होने के कारण वैदिक ब्राह्मणोंकी किसीभी कर्ममें निःसन्देह प्रवृतिही न होगी। और हम वैदिक महानुभावोंको निरन्तर देखते है कि वह निश्चित रूपसे स्वकीय कर्मोंमे प्रवृत्तिपरायणहैं। अतः अंग वाक्योंका उड जाना तो वेदमें है नहीं। इसलिये वेदसे अविरुद्ध स्मृति वचनोंसेकुछही अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकारका वेदानुकूलत्व स्मृति और सदाचार

मन्त्राः शक्यन्तेऽनुमातुमिति तादृशं वेदानुकूलं यत्किमपिस्मृतिसदाचारादिकं तत्सर्वमत्र प्रमाणम्। प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धन्तु स्मार्त्तं वचनं त्यज्यत एव। तथा च सूत्रम् "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्,, इति। १७। प्रकृते च वेदानुकूलास्वेव हारीतादिस्मृतिषु श्रीराममंत्रस्य दण्डग्राह्हिकयास्त्येव विद्यमानत्वमिति।

षडक्षरंदाशरथेस्तारकंब्रह्मगद्यते।
सर्वैश्वर्यप्रदंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ६।२४०।
तस्माद्रामितिवैबीजमाद्यंतस्यमनोः स्मृतम्।
शक्तिःश्रीरुच्यते राजन्! सर्वाभीष्टफल प्रदा।
श्रियोमनोरमोयोऽसौ सराम इति विश्रुतः।
चतुर्थ्यानमसश्चैव सोऽर्थःपूर्ववदेवहि।६। २५२।

इति वृद्धहारीते स्पष्टमस्यमनोरुक्तिरुपलभ्यत इति। वाल्मीकि संहितायामपि एवंमाहात्म्यसंयुक्तो राममंत्रो विशेषतः। मोक्षप्रदोमहामंत्रो मन्त्रराजः प्रशस्यतइति। एवं पुराणादिष्वपि श्रीराम

आदिमें है। अतः वह सब इस राममंत्रमें प्रमाण हो सकते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध यदि स्मार्त वचन हो तो उसकातो त्यागही कियाजाता है। इसमेंप्रमाणरूप जैमिनि ऋषिका 'विरोधे, इत्यादि सूत्रही हैं।१७।

श्री राममंत्रके विषयमें वेदानुकूल हारीतादि स्मृतियां प्रमाण हैं। इन स्मृतियोंमे स्पष्ट रूपसे श्रीराम मंत्र विद्यमान है। "दाशरथी भगवानका जो षड़क्षर मंत्र है" वह तारक ब्रह्म कहा जाता है। वह मनुष्योंको सब ऐश्वर्य और सब इच्छित फलोंका देने वाला है। ६।२४०। उस मंत्रका 'रां, यह बीज है और सब अभीष्ट फलोंका देनेवाली श्रीशक्ति है। श्रीका मनोरम जोहो वह 'राम, पदसे कहा जाता है। चतुर्थ्यन्त और नमस् पदसे यही पूर्वोक्त अर्थ कहा जाता है। इस प्रकार वृद्ध हारितमें श्रीराम मंत्र स्पष्ट रूपसे कहा गया है। वालमीकि संहितामेंभी 'एवं माहात्म्यसंयुक्तः इत्यादि श्लोकसे श्रीराम मंत्र और उसका महत्त्व प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार पुराणमें भी श्रीराम मंत्रका वारंवार वर्णन मिलता है। (इसको ग्रंथकार पुराणके प्रकरणमें कहेंगे)।१८।

मन्त्रस्य वर्णनमसकृदुपलभ्यते ।१८। शिष्टाचारस्यापि "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः" इत्यभिहितस्याविच्छिन्नसम्प्रदायपारम्पर्येण सम्प्राप्तस्य शिष्टाकोपाधिकरणे प्रामाण्यमुपादितम्। नच केषांचित् सदाचाराणां वेदेऽनुपलभ्यमानत्वात्स्मृतिष्वप्यदर्शनात् कथं वैदिकत्वमितिवाच्यम् अविच्छिन्न वैदिकसत्सम्प्रदायनिष्ठैर्धर्मबुद्ध्यानुष्ठितस्य सामान्याकारेण स्मृत्यादिषूपदिष्टस्यानुपदिष्टस्य वा वेदाविरोधिस्मार्तधर्मवदेव वेदमूलत्वेन सम्भवत्येव प्रामाण्यम् ।१९। आहच भगवान् वसिष्ठः "श्रुति स्मृतिविहितो धर्मः ,, "तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्,, (अ-१।३।४) तथैवापस्तम्बोऽपि "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च इत्याह। मनुरपि "वेदोऽखिलो धर्ममूलंस्मृतिशीले चतद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेवच, इति स्पष्टमभिदधौ ॥

शिष्टाश्चात्र—धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।

इत्यादिलक्षणलक्षिता ज्ञेयाः। २०।

अब रहा सदाचार सो वह भी अविच्छिन्न सम्प्रदायपराम्परा होनेके कारण पूर्ण रीतेसे प्रमाण है। यह बात पूर्वमीमांसाके शिष्टाकोपाधिकरणमें प्रतिपादित है। यहां कोई शंका उठाते हैं कि "कई ऐसेभी सदाचार हैं जिनका वेद और स्मृतिमें प्रमाण नहीं मिलता और लोकमें प्रचलित हैं उनको वैदिक कैसे मानाजासकता है,, उत्तर देते हैं कि जिन आप्त पुरुषोंकी वैदिक परम्परा नष्ट नहीं हुई है ऐसे पुरुषोंसे धर्म बुद्धया पालन किये गये धर्मका स्मृतियोंमें सामान्य रूपसे कथन होनेपरभी अथवा न होनेपरभी, श्रुतिके अविरुद्ध होनेके कारण वह वेद मूलही कहा जावेगा और उसको सर्वथा प्रमाण माना जासकता है ।१६। इसी आशयको भगवान वसिष्ठजीने अपनी स्मृतिमें कहा है। श्रुति और स्मृतिमें जिसका विधान हो वह धर्म है। उसके अलाभमें शिष्ट पुरुषोंका सदाचारभी प्रमाण है। (१।३।४) इसी प्रकार आपस्तम्बनेभी कहा है कि 'धर्मज्ञोंका सदाचार प्रमाण है और वेदभी प्रमाण हैं। मनुस्मृतिमेंभी 'समस्त वेद धर्ममें प्रमाण हैं वेद वित् पुरुषोंकी स्मृति और शीलभी प्रमाण है। एवं साधु पुरुषोंका सदाचार और आत्म तुष्टि यह सबभी प्रमाण है,, इस प्रकार कहा गया है। परिबृंहणके साथ जिन्होंने वेद पढा है श्रुतिवाक्यऔर उसके अर्थकोजो यथार्थरूपसे जानते हैं वही ब्राह्मण शिष्ट कहे जाते हैं ।२०।

अयमभिसन्धिः–धर्मेऽखिलस्य वेदस्य तदविरुद्धानाञ्च स्मृतीनाम्प्रामाण्यम्। रागद्वेषाद्यसंश्लिष्टस्याप्तस्य शीलमाचारश्चापि प्रमाणम्। विकल्पविहितेषु पदार्थेषु यदनुष्ठानेनात्मनस्तुष्टिर्भवेत्तस्यैवानुष्ठानम्। इयमेवात्मतुष्टिर्धर्मेप्रमाणम्। नतुस्वस्यात्मनः प्रियं यत्किमपि। एतेन स्वस्यात्मनो यत्प्रियं स्वैरविहरणादिकं तदेवानुष्ठेयं स एवच धर्म इति वदन्तोऽतिक्रान्तसम्प्रदायमर्यादाः स्वच्छन्दचारिण उच्छृंखला निराकृता वेदितव्याः। वैकल्पिकेषु पदार्थेष्वेवात्मनः प्रियस्यानुष्ठेयत्वस्यैव शास्त्रकृत्सम्मतत्वात्।२१। एवञ्च भगवच्छ्रीरामप्रवर्तितत्वात्परमेष्ठिवसिष्ठपराशरद्वैपायनादिभिराप्तैर्महाजनैः स्वसदाचारपरिपाट्या परिगृहीतत्वात्तदविच्छिन्नपारम्पर्य्येण प्रथितस्यास्य श्रीराममनोर्वेदानुकूलसदाचारात्मकप्रमाणवेद्यत्वेन संगच्छत एवादिमंवैदिकत्वमिति ।२२।

अथ द्वितीय तल्लक्षणपक्षमुद्भावयामः। सच वेदोपबृंहणेतिहासपुराणैः प्रतिपाद्यत्वं वैदिकत्वमित्येतल्लक्षणः। अस्मिन्नपिकल्पे निर्विकल्पमुपपन्नमस्य मनोर्वैदिकत्वम् ।२३। तथाहि–

तात्पर्य यह है कि "धर्ममें अखिलवेदको और वेदसे अविरुद्ध स्मृतियोंको प्रामाण्य है। एवं रागद्वेषसे रहित आप्तपुरुषोंका शील और आचारभी प्रमाण है। विकल्प करके जो पदार्थ विधानकिये गये हैं उनमें जिसके अनुष्ठानसे अनुष्ठाताके मनको संतोष हो वहभी धर्ममें प्रमाण है। आत्मतुष्टिका यह अर्थ नहीं है कि 'कर्ता को जो कुछभी प्रियहो उसको ही कर चले और यही आत्मतुष्टि होती हुई धर्ममें प्रमाण भूत मानी जावे। इससे 'स्वस्यच प्रियमात्मनः, इसका स्वच्छंद मनोनुकूल विहरणभी धर्म है, ऐसे तात्पर्यको निकालने वाले उच्छृंखलमनुष्योंके मतका खण्डन होजाता है। क्योंकि उपर्युक्त तात्पर्यही साधु सम्मत है।२१। इस प्रकार भगवान् श्री रामचंद्रजीसे प्रवर्त्तित और ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यसादि परम आप्तमहामुनियोंके सदाचारसे सम्प्राप्त एवं उनकी अविच्छिन्नपरम्परा में अखण्ड रूपसे चले आते हुए इस श्रीराम मंत्रमें प्रथम लक्षणके अनुसार वैदिकत्व सुतरां उपपन्न हुआ।२२।

अब वैदिकपदके द्वितीय लक्षणकी संगति की जाती है। वह है 'वेदके (उपबृंहक) तात्पर्यको बढाने वाले इतिहास और पुराणोंसे प्रतिपादित होना, यह। इस (दूसरे) कल्पमेंभी श्री राम मंत्रको 'वैदिकत्व, निर्विवादरूपसे सिद्ध होता है।२३। अब इसका विवेचन किया जाता है।

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।

इति बार्हस्पत्यवचनादितिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहकत्वमवगम्यते । उपबृंहणं तावत् " अतिसंक्षिप्तस्याम्नायार्थस्यतदविरोधिसद्वचोभिर्विशदीकरणम् । प्रतारकत्वञ्चात्र स्वानवबोधप्रयोज्यानर्थोत्पादकत्वम् नह्यनधीतोभयमीमांसोऽनवलोकितेतिहासपुराणादितन्त्रः शक्नोति दुरूहंवेदार्थमवगन्तुम् । तदुक्तं श्लोकवार्तिके—

यथार्थधर्मावबोधस्य प्रमाणं वैदिकं वचः ।
तदर्थनिर्णये हेतुर्जैमिनीयं तथैव नः ।
स्थिते वेदप्रमाणत्वे पुनर्वाक्यार्थनिर्णये ।
मतिर्बहुविदां पुंसां संशयान्नोपजायते ।
केचिदाहुरसावर्थः केचिन्नासावयं त्विति ।
तन्निर्णयार्थमप्येतत्परं शास्त्रं प्रणीयते । इति ।

" इतिहास और पुराणोंसे वेदका उपबृंहण करना चाहिये। क्योंकि अल्प श्रुतसे वेद भयमानता है कि यह मेरा प्रतारण करेगा अर्थात् मेरे अर्थका अनर्थ कर देगा,, इस बृहस्पतिके वचनसे इतिहास और पुराणोंको वेदोपबृंहक माना गया है। अत्यंत संक्षिप्त वेद वचनोंके उनके विरोधी वचनोंसे विशद करनेको उपबृंहण कहा जाता है। और व्याख्याताके अज्ञानके कारण अर्थकाअनर्थ करदेना, इसको प्रतारणा कहा जाता है।

जिसने पूर्व मीमांसा और उत्तरमीमांसा यह दोनों नहीं पढीं और इतिहास पुराण तथा तन्त्र शास्त्रोंकाभी परिशीलन नहीं किया वह अति गहन वेदार्थको नहीं जानसकता। श्लोक वार्तिकमें कुमारिल भट्ट कहते हैं कि 'धर्मके यथार्थ स्वरूपका परिज्ञान करानेमें वेद वाक्यही प्रमाण है। वेद वाक्यके अर्थका निर्णय करनेके लिये जैमिनि महर्षिका दर्शन (पूर्वमीमांसा) हमारे लिये प्रमाण है। वेद प्रामाण्यका निश्चय होजाने परभी वाक्यार्थ निर्णय करनेके लिये बहुश्रुत मनुष्योंकी बुद्धिभी संशयमें पडकर प्रतिहत हो जाती है। कोइ कहते हैं 'यह अर्थ है, और कोई कहते हैं यह नहीं किन्तु यह अर्थ है।

एवञ्च यथावेदार्थनिर्णीतौ मीमांसायाःप्राधान्यंतथैवेतिहासपुराणयोरपि तदुपबृंहणत्वंशास्त्रकृद्भिरुपपादितम् ।२४। तथाचेतिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहणत्वेसिध्देतदभिधायित्वमपि वैदिकत्वं शक्यत एव वक्तुम्। श्रीरामषडक्षरमंत्रस्य च नारदीयादिपुराणेषु स्पष्टतया प्रतिपाद्यत्वमुपलभ्यते ।२५। तथाहि—

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यन्ते सिद्धिदायकाः ।
येषामाराधनान्मर्त्यास्तरन्ति भवसागरम्। बृ.ना.पु.पू.ख.७३अ.१श्लो.।
वैष्णवेष्वपि मंत्रेषु राममंत्रः फलाधिकः ।
गाणपत्यादिमंत्रेभ्यः कोटिकोटि गुणाधिकः । ना.पु.७३ ।३।
विष्णुशय्यास्थितो वह्निरिन्दुभूषितमस्तकः ।
रामाय हृदयान्तोयं महाघौघ विनाशनः ।ना. पु. ७३।४।

इस विकल्पके निर्णय के लियेभी इस मीमांसा शास्त्रका प्रणयन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि वेदार्थ निर्णयके लिये जिस प्रकार मीमांसा शास्त्रकी प्रधानतया आवश्यकता है। इसी प्रकार इतिहास और पुराण इनकोभी शास्त्रकारोंने वेदार्थके विस्तार करने के लिये परमोपयोगी माना है।२४। इतिहास और पुराणको इस प्रकार उपबृंहण सिद्ध हो जानेपर इतिहास और पुराणोंमें जिसका वर्णन आताहो उसकोभी वैदिक कह सकते हैं। श्रीराम मंत्रका नारदीय आदि पुराणोंमें स्पष्ट रूपसे वर्णन मिलता है। इसका नीचेके प्रघट्टकसे विवेचन किया जाता है।

"अब श्रीरामजीके मंत्रोंका वर्णन किया जाता है जो शीघ्रहीसिद्धि देने वाले हैं। और जिनके आराधनसे मनुष्य भवसागरको तर सकता है (ना. पु. ७३।१) यह श्रीराम मंत्र गाणपत्यादि मंत्रोंकी अपेक्षा कोटि कोटि गुण अधिक फल देने वाला है। और समस्त वैष्णव मंत्रोंमेंभी सबसे अधिक फल वाला है। ।७३।३। विष्णुशय्यास्थित वह्निबीज अर्थात् 'रा, और इन्दु चन्द्र अर्थात् अनुस्वार(वर्तुल होनेकी समता) से मस्तक अर्थात् ऊर्ध्वभाग (लिपिगत) जिसका भूषित है 'रां, यह आदिमवर्ण तथा हृदयान्त रामाय पद अर्थात् 'रामायनमः, इस प्रकार अन्तिम आनुपूर्वीयुक्त यह मंत्रराज सब पाप राशिको नाश करने वाला है।७३।४।

सर्वेषु राममंत्रेषु ह्यतिश्रेष्ठः षडक्षरः ।
ब्रह्महत्या सहस्राणि ज्ञाताज्ञात कृतानिच । ना.पु.७३।५।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पयुतानि च ।
कोटि कोटि सहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै । ना.पु.७३।६।
मंत्रस्योच्चारणात्सद्योलयं यान्ति न संशयः।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दो रामश्च देवता ।७३।७।
षट् कोणेषु षडर्णानिमंत्रस्यविलिखेद्बुधः ।
अष्टपत्रे तथाष्टार्णांलिखेत्प्रणवगर्भितान् ।७३।३३।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ।
ब्रह्मासंमोहनः शक्तिर्दक्षिणा मूर्तिसंज्ञकः ।७३।५६।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तास्ते तेषां मुनयःक्रमात् ।
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिःस्मृतः ।७३।५४।
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री श्रीरामो देवता पुनः
बीजशक्तिराधमान्त्यं मंत्रार्णैः स्यात्षडंगकम् ।७३।५४।

श्रीरामजीकेभी सबमंत्रोमे यह षडक्षर मंत्र श्रेष्ठ है। यह मंत्रराज जान अजानमें किये गये ब्रह्महत्त्या, स्वर्णस्तेय, सुरापान, और गुरुस्त्रीगमन आदि महा पापोंको और गोवधादि उप पापोंको उच्चारण मात्रसे शीघ्रही नाश करता है इसमें संदेह नहीं है।७३।५।६। इस श्रीराम मंत्रके ब्रह्मा मुनि हैं। गायत्री छन्द है। और श्रीरामदेवता हैं। छः कोनेमें छःअक्षर लिखै। और अष्टपत्रमें प्रणवयुक्त आठ अक्षरोंको लिखै ।७३।३३।

षड़क्षर मंत्र छः प्रकारका है। और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थोंको देने वाला है। इस षड़क्षर मंत्रके छः अक्षरोंके अनुक्रमसे ब्रह्मा, संमोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य, और श्रीशिव ये मुनि कहे गये हैं। अथवा मंत्रगत बीजादिवर्णों के विश्वामित्र मुनि कहे गये हैं।७३।५४। इस मंत्रका गायत्री छन्द है। श्रीरामचन्द्रजी देवता हैं बीज शक्ति है। आदिके और अन्तके वर्णोंके मिलाने पर जो शब्द होगा वह एतन्मंत्रप्रतिपाद्य प्रधानदेव माने जाते हैं। इस प्रकार मंत्र वर्णोंसे छः अंग वाला है।७३।५८।

इत्याद्यनेकपौराणिक वचनैर्विशदतया प्रतिपादितत्वाद्द्वितीयं वैदिकत्वमपि श्रीराममनावुपपन्नतरम् ।२६।

अथ तृतीयकल्पाभिहितवैदिकत्वं वेदानुकूलकृतिसाध्यत्वरूपम् । वैदिकवाक्यानांस्वार्थानुष्ठानेऽर्थिसमर्थजनप्रवर्तकत्वात्तदनुष्ठानायास्थीयमानो योऽयं यत्नस्तद्वताऽस्यमनोरप्यनुष्ठेयत्वं सम्भवतीत्येतदर्थकम् । नहीयं राजाज्ञास्ति यदाम्नायमात्रानुमोदितदर्शपौर्णमासादिश्रौतयागानुष्ठातृभिर्न किञ्चिदन्यत्कर्मानुष्ठेयमिति । किन्तु परमपुरुषार्थेप्सुभि र्वेदानुशासनवशवर्तिभिश्च वैदिकं शास्त्रीयं लौकिकं चेति त्रिविधमप्याचारपूतं कर्मावश्यमनुष्ठेयम् । अत एव श्रुतिस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधंप्राहुः साक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् । इति मानवं वचः- संगच्छते । अत एव वृद्धैः

इत्यादि अनेक पौराणिक वचनोंसे इस मंत्रराजका विशदरूपसे प्रतिपादन किया गया है। अतः द्वितीय वैदिकत्वभी श्रीराम मंत्रमें सुतरां उपपन्न हुआ।२६।

अब तृतीय कलपसे कथित वैदिकत्वका विवेचन किया जाता है। वह है वेदानुकुल जो यत्न उस यत्नसे साधित किया जाना। इसी अर्थको ग्रन्थकार स्वयं विशद करते हैं। वैदिक वाक्य अपने अर्थके पालन करानेके लिये अर्थी तथा योग्यता वाले पुरुषकी आकांक्षा रखते हैं। इस लिये वेदार्थोंके अनुष्ठानके लिये जो यत्न किया जायगा उस यत्न वाले अधिकारी पुरुषद्वारा इस मंत्रकाभी अनुष्ठान अच्छी प्रकारसे हो सकता है। यही तृतीय वैदिकत्वका तात्पर्यार्थ है। यह कोई राजाज्ञा नहीं है कि, वैदिक दर्श पौर्णमासादि श्रौत यागोंका अनुष्ठाता अन्य किसी कर्मका अनुष्ठानही न करै। उचिततो यह है कि परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की इच्छा वाले शिष्ट जनोंको वेदकी आज्ञाके वश वर्ती हो कर वैदिक, शास्त्रीय और लौकिक इस प्रकार त्रिविधभी सदाचारसे पवित्र कर्म अवश्य पालन करने चाहिये। इसी लिये श्रुति, स्मृति, सदाचार, और स्वात्मप्रिय यह चार प्रकारका धर्म ऋषियोंने माना है यह मनु वाक्यभी संगत हुआ।२७।

प्रवृत्तिसंज्ञकेधर्मेफलमभ्युदयोमतः ।
निवृत्तिसंज्ञके धर्मे फलंनिश्रेयसंमतम् ॥

इति निर्णीतम् । तथाचश्रुतिः "धर्मेणपापमपनुदति,, एवञ्चनित्य-सुखैषिभिर्वेदाद्धर्मपक्षमन्विष्य तदनुष्ठानपूर्वकमन्यदपिवेदाविरोधि-निःश्रेयसातिशयाधायिकर्मशास्त्रीयं लौकिकं यापिभवेन्नजातुचिद्धे-यमितिशास्त्रीयः पन्थाः ।२८। वैदिककर्ममार्गमुत्सृज्यापि लोकोपकृत-येऽन्यदनुष्ठानमितितुसद्भिर्गर्हितम् । तथानुष्ठातुःप्रत्यवायसंभवात् । एतदेवोक्तंगीताचार्यैः ।

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
नससिद्धिमवाप्नोति नसुखंनपरांगतिम् ॥ इति

यमोप्याह- वेदाःप्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनंप्रमाणम् ।
यस्यप्रमाणंनभवेत्प्रमाणं कस्तस्यकुर्याद्वचनं प्रमाणम् ॥

अ. प्र. टी.। इसी लिये यह वृद्धोंने कहा है कि "प्रवृत्ति धर्मका फल अभ्युदय है। अर्थात् ऐहिक सुख और स्वर्ग सुख है। और निवृत्ति संज्ञक धर्मका फल मोक्ष है।,, 'धर्मसे पाप नष्ट होता है, यह श्रुतिभी कहती है। इस लिये मोक्ष सुखकी इच्छावाले पुरुषोंको चाहियेकि वेदसे धर्मके स्वरूपको जानकर उसका यथार्थ रूपसे अनुष्ठान करते हुए अन्य जो वेदका अविरुद्ध और मोक्षको देने वाला शास्त्रीय अथवा लौकिक किसीभी प्रकारका कर्म हो उसेभी पालन करना चाहिये. छोड़ना कभी न चाहिये यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है। वैदिक कर्म मार्गको छोडकर लोकमनोरंजनके लिये अन्य कार्य करना यह साधु जनोंसे निन्दित मार्ग है। ऐसे कर्मकर्ताको प्रत्यवाय होता है।

यही बात श्रीभगवानने गीता शास्त्रमें कही है कि, 'जो मनुष्य शास्त्र विधिको छोड़कर अपनी स्वेच्छा चारितासे वर्तता है वह सिद्धिको नहीं प्राप्त होता और न स्वर्गादि सुख अथवा परगति मोक्षकोही प्राप्त होता है। इसी प्रकार यम स्मृतिमेंभी लिखा है कि, 'हमारे मतमें वेद प्रमाण हैं स्मृतियांभी प्रमाण हैं एवं धर्मार्थ युक्त वचनभी प्रमाण है। जिसके मतमें उपर्युक्त तीनो प्रमाण प्रमाण नहीं उसके वचनको कौन प्रमाण करेगा।

इति ।२९ अयमभिसन्धिः । श्रौतं स्मार्तञ्चधर्ममनुतिष्ठद्भिः काल-क्रमात्कुलागतोऽपिधर्मोऽनुष्ठेय एव । सदाचारस्यापि प्रमाणकोटौनि-विष्टत्वात् । तदाह भगवान् सुमन्तुः—

यत्रशास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसुभारत!
उदितेऽनुदितेचैव होमे भेदोयथा भवेत् ॥
तस्मात्कुलक्रमायातमाचारंत्वाचरेद्बुधः ।
सगरीयान्महाबाहो! धर्मशास्त्रोदितादपि ॥ इति ।३०।

स्वसम्प्रदायसिद्धस्यापिधर्मस्यानुष्ठानं सर्वसम्मतम् । एवञ्च सु-खविशेषलिप्सयैवार्थिना साम्ना चिकेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते । यदि ततोऽ-प्यधिकसुखलिप्साचेन्निष्कामकर्मणामप्यनुष्ठानं कार्यमेव । यतः चरम-पुरुषार्थस्य मोक्षस्य तदनुष्ठानप्राप्यत्वात् ।३१। नचकामस्यैव निस्सी-

---

अर्थात् पूर्वोक्ततीनों प्रमाणोंको न माननेवाले के वचनकोभी नहीं मानना चाहिये,। यह अभिप्राय है कि, श्रौत और स्मार्त कर्मको पालन करने वालोंको अनन्तकालसे कुलागत धर्मकाभी पालन करना चाहिये। क्योंकि सदाचारभी प्रमाण कोटिमे माना जाता है। इसको सुमन्तु महर्षिने इस प्रकार कहा है। जिन कर्मोंके पालनमें शास्त्रकी गति विभिन्न प्रकारसे उपलब्ध होतीहो जैसे 'उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति, इनदो वचनोंसे उदितहोम और अनुदितहोम इनदोनोंका ही विधान पाया जाता है, एवं वाक्यान्तरमें दोनोंकी निन्दाभी श्रुत है। इस अवस्थामें कुल परम्परासे प्राप्त आचारके अनुसारही विद्वानको व्यवहार करना चाहिये। हे महाबाहो! धर्म शास्त्रके कथनसेभी वह कुलाचार श्रेष्ठमाना जाता है।

इस प्रकार अपने अपने संप्रदायमें प्रसिद्ध जो धर्म हो उसका अनुष्ठानभी सर्व संमत है। इससे यह निष्पन्नहुआकि सुख विशेषकी लिप्सासेही तदर्थी मनुष्योंकी वैदिक कर्मोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है। परंतु उस सुख विशेषसेभी अधिक सुखकी इच्छा हो तो निष्काम भगवद्दर्शन, वन्दन, मंत्र जपादि रूप कर्मोंकाभी अवश्य अनुष्ठान करनाही चाहिये। क्योंकि, उन निष्काम कर्मोंसे अंतिम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति होती है।३१। कोइ कहतेहैं कि, कामही निः

मसुखस्वरूपत्वेन चरम पुरुषार्थत्वम् । तथाचारण्यकेपर्वणि—

अर्थार्थीपुरुषोराजन् ! बृहन्तंधर्ममिच्छति ।
अर्थमिच्छन्तिकामार्थं नकामादन्यमिच्छति ॥
नहि कामेन कामोन्यः साध्यते फलमेवतत ।
इन्द्रियाणांचपञ्चानां मनसोहृदयस्यच ॥

इति शास्त्रनिश्चयादितिवाच्यम् । कामस्यसुखरूपत्वेऽपिदुःखा-रूलिसत्वेन निरतिशयसुखस्वनुपत्वाभावात् ।३२। अतएवावाससमस्त-शास्त्रतत्वा महामहिमशालिनो ब्रह्मवसिष्ठपराशरव्यासादिमुन-यस्तस्यनिरतिशयसुखरूपत्वमपाकृत्यमुहुर्रनिन्दयन् । तदेवाह—

कामिनो वर्णयनकामं लोभंमुग्धस्यवर्णयन्।
नरःकिंफलमाप्नोति कूपेऽन्धमिवपातनम् ॥

नचैवंसंसाराब्धिनिमग्नजनसमुद्धर्तुकामोऽखिल शास्त्रपारावार-पारदृश्वापाराशर्यः कथमर्थकामौसुखत्वेनावर्णयत् ।३३।

सीम सुखरूप होनेके कारण अन्तिम पुरुषार्थ है। अत एव भारतके आरण्यक पर्वमें यह कहा हुआ है कि, हे राजन् ! प्रत्येक मनुष्य अर्थकी, प्राप्ति के लिये अधिक धर्मकी इच्छा रखता है। और उस अर्थको काम प्राप्ति के लिये साधन मानता है। परंतु कामसे अन्य किसी फलकी इच्छा नहीं रखता। काम रूप पुरुषार्थसे दूसरे किसी कामकी साधना नहीं होती। क्योंकि, पांच इन्द्रियोंका मनका और हृदयका एक कामही फल है। इत्यादि वचनोंको प्रमाणतया कहते हैं। यह उनका कथन ठीक नहीं है। क्योंकि, कामको सुखरूप होनेपरभी दुःख मिश्रित होने के कारण निरतिशय सुखरूपता नहीं कही जासकती ।३२। इसी लिये समस्त शास्त्रोंके तत्वको जानने वाले महा-महिमाशाली ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, और व्यास आदि मुनियोंने उस काम-रूप पुरुषार्थको अन्तिम सुखरूपतासे खण्डन करके बारंबार उसकी निन्दा की है। यही पुराणान्तरमेंभी कहा गया है। कामी पुरुषके लिये कामका वर्णन और लोभीके लिये लोभका वर्णन करने वाला मनुष्य किस फलको प्राप्त करेगा यह एक प्रकारसे कुपमें अन्धेको गिरानेके समान है। यहां पर यह शंका होती है कि, संसार समुद्रमें डुबे हुए जनसमुदायके समुद्धारकी इच्छा वाले एवं शास्त्र सागरके पार देखने वाले पराशर ऋषिके पुत्र श्री व्यास भगवान अपने भारतमें किस लिये अर्थ और कामको सुख रूपसे वर्णन करते

इतिचेदित्थम्। धर्ममोक्षयोर्निरतिशयसुखरूपत्वविधित्सयालोकानुग्रहपरोऽपिमुनिस्तौदृष्टान्तीकृत्य धर्ममोक्षयोः पुरुषार्थं परम पुरुषार्थत्वे प्रत्यपीपदत्। यतःकेचिददूरदर्शिनोवैदिककर्मणिश्रद्धाजडाः सुखैकमात्रलिप्सवः कामक्लेशलेशमप्यसहिष्णवोधर्मापवर्गयो र्वैदिकानुष्ठाने मन्दंप्रवर्तेरन् ।

अर्थकामयोश्चैन्द्रियकतयातयोरर्जने प्रवृत्तिंविधित्सवस्तत्रचापाततः सुखमुपलभ्योद्रिक्तरागास्तदधिकफलप्रेप्सयाधर्मनिःश्रेयसयोरपिजागृयुरितितन्निदर्शनमितिहासपुराणादिष्वकरोन्महर्षिः।
तथाचोक्तम्-

> मुनिनाऽपिचकामार्थौ ज्ञात्वालोकमनोहरौ।
> निन्द्यावपिस्तुतावेतौ धर्ममोक्षविवक्षया॥
> अन्यथाघोरसंसारे बन्धहेतू जनस्यतौ।
> वर्णयेत्सकथं धीमान् महाकारुणिकोमुनिः॥

है। इस शंकाका समाधान यह है कि, धर्म और मोक्ष इन दोनोंमेंही निरतिशय सुख रूपताके विधानकी इच्छासे लोकानुग्रह परायण होनेके कारण मुनिने अर्थ और कामको दृष्टान्तभूत बना कर धर्म और मोक्षमें पुरुषार्थत्व और परम पुरुषार्थत्वका प्रतिपादन किया है। क्योंकि, कुछ अदूरदर्शी मनुष्य वैदिक कर्मोंमें मन्द श्रद्धा वाले होकर सुख मात्रकी इच्छा रखते हुए शारीरिक क्लेश लेशकोभी नहीं सहन करते हुए धर्म और अपवर्गके लिये वैदिक अनुष्ठानमें प्रवृत्ति नहीं करेंगे।

तात्पर्य यह है कि अर्थ और कामको इन्द्रिय गोचर होने के कारण उनको प्राप्त करने के लिये अपनी प्रवृत्ति करते हुए उन दोनोंमें आपाततः सुख देखकर भोगार्थ राग के अधिक बढजाने पर उससेभी अधिक सुखकी इच्छासे धर्म और मोक्षरूप पुरुषार्थ में भीजागृत हो जावें इस कारणसे महर्षिने इतिहास और पुराणों में पुरुषार्थ रूपसेअर्थ कामकाभी परिगणन किया है। यही विषय इन श्लोकोंसे वर्णित है। 'भगवान् व्यासजीने काम और अर्थको लोक मनोहर जानकर विवेकी जनोंकी दृष्टिमें निन्द्य होनेपरभी धर्म और मोक्षको पुरुषार्थ रूपसे उपादेयत्व समझाने के लिये इन दोनोंकीभी प्रशंसाकी। नही तो महा कारुणिक व्यास मुनि स्वयं बुद्धिमान् होने पर इस घोर संसारमें मनुष्यको बन्धनके हेतु उन दोनोंको होने के कारण क्यों वर्णन करते।

लोकचिन्तानुरागार्थं वर्णयित्वाचतेनतौ ।
इतिहासैर्विचित्रार्थैः पुनस्तत्रैवनिन्दितौ ॥ इति ॥ ३४ ।

एवमतिसंक्षेपात्त्रिवर्गेषुधर्मस्यैवप्राधान्यम् तस्यापिच निःश्रेयसाङ्गत्वमतश्चरमपुरुषार्थपदाभिधेयत्वंकेवलंमोक्षस्यैवेति प्रासङ्गिकमुपपाद्येदानींप्रकृत मनुसरामः । वैदिकाचारचतुरचणचेतोभिरेवसंजातस्वोपास्यदेवताभिनवानुरागवशात् देवतार्चन, वन्दन, मन्त्रजपादिकंपरप्राप्तिप्रयोजकंशक्यतएवावश्यमनुष्ठातुम् । नह्यनयोर्मिथो निवर्त्यनिवर्तकभावोऽस्ति । येन वैदिकक्रियाकलापमनुतिष्ठतिनेदमाश्रयमासादयेत् । तस्माच्छ्रौताचारनिरतेनापिसाध्यमिदं मनोरत्नमिति तृतीयमपिवैदिकत्वं भजतेऽत्रमनौसामञ्जस्यम् ।३५।

चतुर्थंवैदिकत्वफल्पोऽयमनल्पफलशालिन्यखिलक्लेशकलिलोत्को-

परन्तु लोकानुग्रह परायण श्रीव्यासमुनिने नाना रूपसे अर्थ कामका वर्णन करके फिरसे अनेक धार्मिक विचित्र आख्यानों द्वारा उनकी निन्दा की है।३४।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंमें धर्मकोही प्रधानता है। और उस धर्मकोभी परम पुरुषार्थ मोक्षका अंगत्व है इस लिये परम पुरुषार्थ केवल मोक्षही सिद्ध है, यह विषय अत्यन्त संक्षेपसे यहां प्रसंगतः उपपादन करके अब पुनः प्रकृतका अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार वैदिक कर्मानुष्ठानमें सुकुशल पुरुषोंसे अपने उपास्य देवतामें अधिक प्रेम होनेके कारण स्वकीय इष्ट देवताका पूजन वन्दन और मन्त्रजप आदि जो परमेश्वर प्राप्तिके साधन हैं वह आवश्यक रूपसे किये जासकते हैं। वैदिक क्रिया समूहका अनुष्ठान और भगदाराधन मंत्र जप इन दोनोंका परस्पर वध्य घातक भाव नहीं है जिससे वैदिक काम्य कर्मका अनुष्ठान करने वाला यह निष्काम भगवत्पूजन मंत्र जप आदिका अनुष्ठानही न कर सके। इस लिये श्रौत परिगणित कर्म परायण होनेपरभी अधिकारी पुरुष इस मंत्रकाभी जप ध्यान आदि करही सकता है। अतः तृतीय वैदिकत्वभी इस मंत्र राजमें संगत हुआ ।३५।

चतुर्थ वैदिकत्वभी महाफल प्रद और अखिल क्लेश विनाश करनेमें

लनचतुरेऽस्मिन् श्रीराममहामंत्रेसंगतिमादधाति। तथाहि-वेदोदितफलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वमित्यस्य वेदेश्रूयमाणानिभूत्यादिरूपाणि फलान्युद्दिश्य तदुपलब्धयेतत्रसतृष्णस्यकामिनोऽधिकफलजिघृक्षोः प्रवृत्तिविधेयतेत्यर्थः ।३६। इदमत्र विचारास्पदम्। नित्यं, नैमित्तिकं, काम्यञ्चेतित्रिविधं कर्म वेदेषूपदिष्टम्। तत्रनित्यनैमित्तिककर्मणोः प्रत्यवायपरिहारएवफलं, सिद्धान्ते भगवन्निग्रह लक्षणएव प्रत्यवायोऽभ्युपेयते। तत्रहिविधिप्रत्ययेन भगवन्निग्रहात्मक प्रत्यवाय प्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिकर्तृव्यापारसाध्यत्वमेवबुबोधयिषितम्। अनिष्टनिवृत्तिरूपेष्टसाधनताज्ञानत्वमनुगतीकृत्योभय विधकर्मसाधारण्येनावश्यकर्तव्यताज्ञानप्रयोजकत्वमुभयत्राप्यक्षतम् ।३७॥

एवञ्चोत्पन्ननिग्रहात्मकानिष्टनिवृत्ति प्रयोजकतां प्रायश्चित्तस्थलीयनैमित्तिकविधावधिगत्य सिद्धत्यत्राप्यवश्यकर्तव्यत्वम्। नन्वेवं

अ. प्र. टी. समर्थ इस श्रीराम मंत्रमें यथावत्संगत होता है। अब इसीका विवेचन किया जाता है। वेदोदित० इत्यादि चतुर्थ कल्पका यह अक्षरार्थ है कि० वेदमें श्रूयमाण जो भूति आदि फल हैं उनको उद्देश्य करके उनकी प्राप्तिके लिये उन फलोंमें तृष्णा धारण करने वाले अर्थी पुरुषकी अधिक फलकी इच्छासे जो प्रवृत्ति हो उस प्रवृत्तिसे संपादन करना।३६। यहां पर यह विचारणीय है। वेदमें नित्य, नैमिक और काम्य इस प्रकार त्रिविध कर्म कहे गये हैं। इनमें नित्य और नैमित्तिक कर्मका प्रत्यवाय परिहारही फल है। क्योंकि, हमारे सिद्धान्तमें भगवानका निग्रह रूपही प्रत्यवाय माना जाता है नित्य, नैमित्तिक स्थलमें विधि प्रत्ययसे भगवन्निग्रह रूप जो प्रत्यवाय है वह प्रत्यवाय जिस कर्ताके व्यापारसे उत्पन्न न हो ऐसा कर्ताका व्यापारही साध्य रूपसे बोधित किया जाता है। उपरके दोनों स्थलोंमें इष्टसाधनत्व ज्ञानको अनुगत करके अवश्य कर्तव्यत्व रूप ज्ञानका प्रयोजक विधि प्रत्यय है।३७। यहां पर इष्ट साधनताभी अनिष्ट निवृत्ति रूपही मानी गई है। इससे सम्पन्न यह हुआकि नित्य नैमित्तिक कर्म न करने के कारण उत्पन्न भगवन्निग्रह रूप अनिष्ट निवृत्तिको प्रयोजकता उभय स्थलमें मानकर अवश्य कर्तव्यता दोनों स्थलमें सिद्ध होती है।

जातेष्ट्यादिनैमित्तिकविधावव्याप्तिस्तत्रतत्कालावच्छेदेन भगवन्निग्रहस्यैवानुदयादितिचेन्न। नित्यस्थले प्रायश्चित्तनैमित्तिकजातेष्ट्यादिरूपनैमित्तिकस्थलयोश्चनिग्रहाभावप्रयोजककृतिसाध्यत्वलक्षणावश्यकर्तव्यत्वमेवसर्वस्थलसाधारण्येनविध्यर्थः। तथाच-

श्रुतिस्मृतीममैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्यवर्तते।
आज्ञाच्छेदीममद्रोहीनमद्भक्तोनवैष्णवः॥

अपिच-प्रतिष्ठासर्वधर्माणां प्रसादकात्मनांहरेः।
तदाज्ञारूपमनघं शास्त्रंश्रुत्यादिमानयेत्॥ एवंगीताशास्त्रेऽपि-
येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मेमतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः।

यहां शंका यह होती है कि, जातेष्टि आदि नैमित्तिक विधिमें यह उपर्युक्त विधि प्रत्ययका अर्थ संगत नही होता। क्योंकि जातेष्टि कर्म सम्पादन करनेके समय भगवन्निग्रह रूप प्रत्यवायकी उत्पत्तिही नहीं हुई। इस शंकाका परिहार यह है कि, नित्य स्थलमें प्रायश्चित स्थलमें और जातेष्ट्यादिरूप नैमित्तिक स्थलमें निग्रहाभावको उत्पन्न करने वाला कृतिसाध्यत्वरूप ही अवश्य कर्तव्यत्वको सर्व स्थलके लिये विध्यर्थ मान लेना चाहिये। इस प्रकार मान लेनेपर किसी भी स्थलमें दोषापति न होगी। इसका विवेचन निम्न प्रकारसे समझना चाहिये। शास्त्रोंमें स्वयं भगवान् कहते हैं कि—श्रुति और स्मृति यह दोनों मेरी आज्ञा रूपही हैं पुरुष इन दोनोंका उल्लंघन करता है अर्थात् नहीं मानता और स्वेच्छासे वर्तता है वह मेरी आज्ञाका छेदन करने वाला है एवं मेरा द्रोही है वह न मेरा भक्तहै न वैष्णव हीं है।

औरभी शास्त्रोंमें कहाहैकि, सब धर्मोंकी प्रतिष्ठा भगवत्कृपा पात्रसज्जनोंके लिये भगवदाज्ञाका पालन करना यही है। और भगवानकी आज्ञारूपही निष्पापशास्त्र हैं उनको अवश्य मानना चाहिये। इसी प्रकार गीता शास्त्रमेंभी स्वयंभगवान् कह रहे है कि, जोलोगश्रुतिस्मृतिकी अवज्ञा करके मेरेमतरूप जोश्रुति स्मृति आदिहैं उनको नहीं मानते वह सब ज्ञानसे मोहित हो कर

इत्याद्यनेक प्रमाणावगतभगवदाज्ञारूपशास्त्रप्रतिपाद्यकर्मणामनुष्ठाने भगवदनुग्रहरूपोऽभ्युदयफलन्तेषामननुष्ठानेचनिग्रह इतिनित्य विधिस्थले जातेष्ट्यादिनैमित्तिकस्थलेच निग्रहविशेषस्यानुदयात्तदभावः प्रायश्चित्तस्थलेतु निग्रहविशेषस्योत्पत्तिप्रतिबन्धादेवतदभावइतिसर्वंसुस्थम् । येतु नित्यनैमित्तिक कर्मणोः फलनविद्यतेऽन्यथासफलत्वेनकाम्यत्वापत्त्यैविध्यानुपपत्तेरि ऽत्याहुस्तत्प्रौढिवादमात्रम् । तयोरपिफलवत्वमवश्यमङ्गीकार्यमन्यथा तयोः प्रवृत्यनुपपत्तेरितिदिक् ।३९॥ काम्यविधाविष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थतयातत्प्रतिपादितस्य "वायव्यंश्वेतमालभेत भूतिकामः,, वायुर्वैक्षेपिष्ठादेवतावायुमेवस्वेन भागधेयेनोपधावति सएवैनं भूतिं गमयति ,, इत्यादेः कर्मणः स्पष्टमेवफलवत्वमुपलभ्यते ।

नष्टबुद्धिवाले गिने जाते हैं। इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे यही सिद्ध होता है कि, भगवदाज्ञारूप जो शास्त्र हैं उनसे प्रतिपादिकजो कर्म है उनका पालन करना भगवदनुग्रह माना जाता है। और शास्त्रप्रतिपादितजो नित्यादि कर्म हैं उनके पालन न करनेसे भगवान्के कोपका भाजन माना जाता है। इसीको निग्रह शब्दसे कहा है। नित्य विधिस्थलमें और जातेष्ट्यादि नैमित्तिक स्थलमें उन कर्मोंका अनुष्ठानकरलेनेपर निग्रह विशेषकी उत्पत्तिही नहीं होती। इस लिये निग्रहा भावही ठीक हुआ। और प्रायश्चित्त स्थलमें निग्रह विशेषकी उत्पत्तिका प्रतिबन्ध होजानेके कारण निग्रहा भाव है। इस लिये सर्वत्र एकरूपसेही विधिप्रत्ययके अर्थकी संगति होजाती है जो लोग नित्य नैत्तिक कर्मका फलही नही मानते। वह अपने वक्तव्यमें यह कारण बताते है कि, यदि नित्य और नमित्तिक कर्मोका फल मानाजायगा तो उनको काम्यत्वापत्तिहोगी और ऐसा होनेसे तीन प्रकारके कर्म नहीं कहेजासकते। इसलिये उनस्थलोंमें फल नहीं मानना चाहिये। यह उनका केवल प्रौढिवाद है। नित्य और नैमित्तिक कर्मोका भि फल मानना ही चाहिये। अन्यथा। निष्फल होनेके कारण उनकर्मों में किसीभी मनुष्य की प्रवृत्तिही न होगी। ३९ ॥ काम्य विधिमेंतो इष्टसाधनत्वकोविध्यर्थ होनसे तत्प्रतिपादित वायुदेवताके " वायव्यं " इत्यादि कर्मोको स्पष्ट ही फलवत्व है।

तथाचास्याः संसृतेर्दुःखबहुलतयासुखमात्रैकलिप्सोः फलार्थिनोऽखिलजगद्धितानुशासनपराम्नायसमधिगतफलप्राप्तये यथा वैदिकेकर्मणिप्रवृत्तिरुपपद्यते तथावैधेषूपायान्तरेष्वपीतिसाम्यमेव फलप्रयोज्यप्रवृत्तेरिति। अर्थित्वावच्छेदेनप्रवृत्तेर्निश्चितत्वात्। ४०। एवञ्चकाम्यविधिसमधिगतकर्मभगवत्प्रसत्तिप्रयोजकध्यानार्चनमंत्रजपादिकर्मणोरुभयोर्मध्ये "अर्क्केचेन्मधुविन्देतकिमर्थं पर्वतंव्रजेदि,, तिन्यायेन भगवदनुकम्पानुबन्धिनामेवकर्मणामविलम्बेन निःश्रेयससमर्पकत्वात्तान्येव प्रथमतोऽनुष्ठातारमनुबध्नुयुरन्यदखिलकर्मकलापानुष्ठानात्।४१। नचैवं काम्यविधेरानर्थक्यं तत्प्रतिपादितेऽपरिमितशरीरायासार्थव्ययादिसाध्ये क्षुद्रफलेसत्यक्षय्यफलके भगवदर्चनमंत्रजपादिलक्षणेऽल्पायाससाध्ये कर्मणिफलमात्रैकप्रेप्सोर्नियोज्यस्य प्रवृत्तेरयोगादितिवाच्यम्। नियोज्यतावच्छेदकधर्माणांवैविध्येनभिन्नफलार्थिप्री-

---

सुखकी इच्छा वाले मनुष्योंकी जिसप्रकार वैदिककर्ममें प्रवृत्ति होती है ठीक उसी प्रकार वैध उपायान्तरोंमे भी प्रवृत्तिभलीप्रकारसे होगी। क्योंकि जहां अर्थिता होती है वहां प्रवृत्ति अवश्यही होती है।४०। फलित यह हुआ कि, काम्य विधिसे जाने गयेकर्म और भगवत्प्रीति प्रदायि जो कर्म हैं इनदोनोंमें "अर्ककोणमें जो मधुमिलता होतो दूर पर्वतमें जानेकी कोइ आवश्यकता नहीं,, इसन्यायसे भगवानकी कृपाके देनेवाले कर्मोंमेंहीप्राधान्य होगा। और उन्हींके अनुष्ठानकेलिये प्रथम प्रवृत्ति होगी। काम्य कर्मोंमें अधिक क्लेश होनेके कारण मन्द प्रवृत्ति होगी। अथवा तो प्रवृत्तिही न होगी। यहांपर यह शंकानहीं करसकते कि, वैदिककाम्यविधिकोही आनर्थक्यहोजायगा। क्योंकि अल्पायाससाध्य भगवत्सम्बन्धि कर्मोंके होनेके कारण बहुत आयाससाध्य वैदिक काम्य कर्मोंमें क्यों प्रवृत्ति करनी चाहिये। क्योंकि फलार्थियोंकी कामना भिन्न भिन्न प्रकारकी देखी जाती है। इसलिये कामनाके अनुसार भिन्न भिन्न फलोंके लिये फलाभिलाषियोंकी भिन्न फलदायीवैदिक काम्य कर्मोंमेंभी अवश्यही प्रवृत्तिहोगी। इस प्रकार वेदोक्त

त्यनुगुणप्रवृत्तिरुपपद्यतएवानियतदेशकालफलेषुकाम्यकर्मसु परिच्छिन्न फलाभिलाषुकाणामितिनकिञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् । तथा च वेदो-दितफलार्थिनः सतः पुंसोऽन्यमनौप्रवृत्तेरनुष्ठेयतोपपद्यतेतरामिति ।४२। नन्वेवंतृतीयतुरीययोरेकार्थत्वम् । तृतीयकल्पेऽपिप्रवृत्त्यनर्थान्तरभूताया एवकृतेः साध्यत्वस्यानपायादितिचेन्मैवं वोचः । तृतीयकल्पप्रतिपाद्यकृतिसाध्यत्वस्यानुष्ठात रितद्योगमात्रमुच्यते नत्वावश्यकतयानुष्ठेय-त्वम् । चतुर्थकल्पकल्पितायाः प्रवृत्तिविधेयतायास्त्वनुष्ठातुर्नियतानु-ष्ठेयत्वमितितयोरर्थान्तरत्वादितिसर्वंचतुरस्रम् ४३ ।

अथ 'वैदैकसमधिगम्यत्वात्मकं पञ्चमं वैदिकत्वमालोचयामः। वैदैकसमधिगम्यत्वमित्युदीर्यमाण एकपदमहिम्ना वेदपदाभिधेयमंत्र-ब्राह्मणान्यतराधिगमविषयत्वे सति तदितरप्रमाणाविषयत्वमिति ल-भ्यते । ४४ । एतादृग्वैदिकत्वेऽभ्युपगम्यमाने लोके सर्वैस्तान्त्रिकैर्वैदि-कत्वेन व्यवह्रियमाणानांकर्म कलापानामवैदिकत्वमापद्येत । मंत्रब्राह्म-

---

काम्यादि कर्मोंमें प्रवृत्ति करते हुएभी विद्वानोंकी श्रीराममन्त्रमें प्रवृत्तिहोनेमें कोई बाधक नहीं है ।४२। इस चतुर्थ कल्पमें और तृतीय कल्पमें एकार्थत्व होनेकी शंका नहीं करनीचाहिये। क्योंकि, तृतीय कल्पमें प्रतिपादितजो कृतिसाध्यत्व है उसका अनुष्ठानकर्ता में सम्बन्धमात्र कहा गया है। आवश्यकरूपसे नियंत्रण नहीं किया गया। और इस चतुर्थ कल्पम जोप्रवृत्ति विधेयता है उसका अनुष्ठान कर्ताको नियत रूपसे 'करनाही चाहिये' इस प्रकार नियन्त्रण किया गया है। इस लिये तृतीय और चतुर्थ वैदिकत्वमें सुतरां भेद सिद्ध होता है। ४३ ॥

अ. प्र. टी. । अब वैदिक समधि गम्यत्व रूप पंचम वैदिकत्वका विचार किया जाता है। एक वेदसेही जाने जा सके इस कथनमें 'एक' पद आया है। इसका अर्थ यह होता है कि मंत्र और ब्राह्मणके शिवाय अन्य किसी प्रमाणसे न समझा जावे। अर्थात् अन्य किसी प्रमाणका विषय नहो। अब यदि ऐसाभी कोई वैदिक हो तो लोकमें सर्व विद्वान् जिन कर्मोंको वैदिक कहते हैं उन सबको अवैदिकता सिद्ध होगी। क्योंकी मंत्र ब्राह्मणसे अतिरिक्त आगम तंत्र

णातिरिक्तागमस्मार्तपौराणिकादिप्रमाणवेद्यत्वात्। भूयांसि कर्माण्याम्नाय श्रुतान्येवानुवदन्त्यागमस्मृतिपुराणादयः। नित्यसन्ध्याग्निहोत्रादिकर्मणां श्रुतिस्मृत्यादिष्वसंशयं निर्दिष्टानां न केनचिद्धर्मवशीकृतस्वान्तेन मृष्यतेऽवैदिकत्वमित्येतादृशं तत्कं यथान्येषु कर्मसु नोपपद्यते तथा प्रकृतेऽप्यस्मिन् श्रीराममनौ नोपपद्यन्तां कानो हानिरिति।४५।

वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वमितिषष्ठं वैदिकत्वमत्र श्रीरामषडक्षरे सुतरामुपपद्यते।४६। तथाहि–मंत्र ब्राह्मणयोरेव वेदपदाभिधेयतयोपनिषद्रूपब्राह्मणात्मके तदेकभागे येऽर्थाः पुरुषार्थतयोपदिश्यन्ते तेऽर्थाधिकृतत्वमेवेत्यर्थकमिदं वैदिकत्वम्। पुरुषाभिलषित फलभूतानाञ्च तदर्थानां रामरहस्याद्युपनिषत्स्वनेकधोपवर्णितानामवाप्तिरेवास्य श्रीराममंत्रस्य प्रयोजनमितितु निर्विवादम्।४७। तद्यथा

शास्त्र, स्मृति, और पुराणोंसे वह कर्म वेद्य हैं। बहुतसे ऐसे कर्म हैं जो वेदमें कथित होते हुएभी आगम स्मृति और पुराणादिमें आते हैं। नित्य संध्या और अग्नि होत्रादि कर्म स्मृतिमें असंदिग्धरूपसे उपदिष्ट हैं ऐसे कर्मोंको कौन धर्मानुरागी अवैदिक कहेगा। यदि कोई संध्यादि कर्मको अवैदिक मानता हो तो ऐसा अवैदिक राममत्रमें हो तो उससे हमको क्या हानि है।४५।

इसके आगे "वेदके एक भागमें जिसका प्रयोजन देखा गया हो और उस प्रयोजनके लिये जिसका अनुष्ठान किया जाता हो उसेभी वैदिक माना जाता है" यह छठा वैदिकत्वभी इस श्रीराम षड्क्षरमें अच्छी तरह उपपन्न होजाता है। इसका विवेचन।'मंत्र और ब्राह्मण, इन दोनोंको वेद पदसे कहा गया है इनमेंसे उपनिषद् रूप जो ब्राह्मणात्मक वेद भाग हैं इस वेद भागमें पुरुषको अभिलाषा पूर्तिके लिये जो फल कहे गये हैं उनके साधनमें समर्थ जो हो उसे वैदिक कह सकते हैं। यह षष्ठ वै. का तात्पर्य है। पुरुषेच्छानुसार फलोंको देने वाला यह श्रीराम मन्त्र है यह राम रहस्यादि उपनिषदोंमे स्पष्टतया वर्णित है। श्रीराम रहस्योपनिषद्में इस प्रकार लिखा है कि,

रामरहस्योपनिषदि "सनकाद्या योगिवर्या अन्येच ऋषयस्तथा। प्रह्ला-दाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन्"। इत्यारभ्य श्रीरामतत्वमव-लम्ब्यप्रश्नस्तदुत्तरश्चाञ्जनेयेन भगवताभिहितम्। ततश्चभूयस्तारकं श्री राममडक्षरमुद्दिश्य तेषामेव प्रश्नः। "ते हनुमन्तं पप्रच्छुः आञ्जनेय ! महाबल विप्राणां गृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति। सहोवाच श्रीराम एवोवाचेति। येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवा-धिकारः स्यान्नान्येषाम्। केवलमकारोकारमकारार्धमात्रा सहितं प्रणव मूह्य यो राममंत्रं जपति तस्य शुभ करो ह्यहम्। तस्यप्रणवस्थाकार-स्योकारस्य मकारस्यार्धममात्रायाश्च ऋषिश्छन्दो देवता तत्तद्वर्णावर्णा-वस्थानं स्वर वेदाग्नि गुणानुच्चार्यान्वहं प्रणवमंत्राद्विगुणं जप्त्वा पश्चा-द्राममंत्रं जपेत्। सरामो भवतीति। "रामषडक्षरीत्यादिभिर्मंत्रैर्यो-मां नित्यं स्तौति तत्सदृशो भवेन्नकिम् भवेन्नकिम्" "सनकाद्या मनुयो हनुमन्तं पप्रच्छुः श्रीराम मंत्रार्थं मनुब्रूहीति। हनूमान् होवाच। सर्वेषु राम मंत्रेषु मंत्रराजः षडक्षरः। एकधाथ द्विधा त्रेधा चतुर्धा पञ्चधा तथा। षट् सप्तधाष्टधाचैव बहुधायं व्यवस्थितः। षडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्वतः" तत्वमस्यादि वाक्यन्तु केवलं मुक्तिदं यतः। मुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते। मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। मुमुक्षूणां विरक्तानां तथाचाश्रमवासिनाम्। प्रणवत्वात्स-दाध्येयो यतीनांच विशेषतः। राममंत्रार्थ विज्ञानी जीवन्मुक्तो न

' एक वार सनकादिक योगि वर्य अन्य ऋषि और प्रहलाद आदिक भक्त श्रीहनूमानजीसे पूछने लगे, हे आंजनेय ! हमको श्रीरामतत्वका और श्रीराम मंत्रका उपदेश कीजिये। यहांसे उन सब ऋषियोंके अनेक प्रश्न हैं। और श्रीहनूमानजीका उत्तर है। इस प्रकरणमें श्रीहनूमानजीने श्रीराम मंत्रका वर्णन और फलभी खूब कहा है। यह सब मूलसे जान लेना चाहिये।

संशयः । "राममंत्राणांकृत पुरश्चरणो रामचन्द्रो भवति" एतदनुक-ल्पमेव रामोत्तरतापिन्याम् । अथ हैनं भारद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किंतारकं किंतारयतीति । सहोवाच याज्ञवल्क्यस्तारकंदीर्घानलं बि-न्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्माय नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतद् ब्रह्मा-त्मिका सच्चिदानंदाख्या इत्युपासितव्यम् ,, "यतो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्तामां प्राप्नुव-न्तिते । अखण्डैकरसानन्द स्तारकब्रह्म वाचकः । रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दश्चिदात्मकः । नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैक कारणम् । सदा नमन्तिहृदये सर्वे देवा मुमुक्षवइति । य एवं मंत्रराजं श्रीरामषडक्षरं नित्यमधीते । सोऽग्निपूतो भवति । सवायुपूतो भवति । सआदित्य-पूतो भवति । ससोमपूतो भवति । सब्रह्मपूतो भवति । सविष्णुपूतो भवति । सरुद्रपूतो भवति । ससर्वै र्देवैर्ज्ञातो भवति । सर्वं क्रतुभि-रिष्टवान् भवति । तेनेतिहासपूराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्ता-नि सकलानि भवन्ति । दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति । स पंक्ति पावनो भवति । समहान् भवति । सोऽमृतत्वञ्च गच्छति । इत्याद्य-नेकवैदिकभागब्राह्मणवचनान्यत्रप्रामाण्यमभिदधते ।४८।

'नचोपनिषदां न वैदिकभागब्राह्मणरूपत्वमिति वाच्यम्' शेषे ब्राह्मणशब्दः (२।१।३३) इति जैमिनीयेनोपनिषदामपिब्राह्मणपद नि-र्देश्यत्वमेवेत्युक्तम्प्रागेवेति नात्रपुनर्विवेचनीयतामर्हत्येत् ।४९। नचान्य-वैदिककर्मकलापस्यापि ब्राह्मणभागनिर्दिष्टफललक्षणार्थेऽधिकृतत्वादेव

अ० प्र० टी० । यहां यह शंका होती है कि उपनिषदोंको वेदका एक भाग ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता । इसका उत्तर यह है कि शेषे ब्रा० इत्यादि जैमिनि सूत्रसे उपनिषदोंकोभी ब्राह्मणही माना गया है । यह विषय प्रथमही कह दिया गया है इस लिये अब दुहराया नहीं जाता ।४९। यदि कोई यह कहे कि, अन्य कर्मभी ब्राह्मण निर्दिष्ट फल देते हैं । अतः उन कर्मोंसे इसमें

वैदिकत्वमिति ततः को विशेष इति वाच्यम् । न कश्चिद्विशेषस्तद्ध-देवास्यापि वैदिकत्वमित्यवेहि । यदिविशेषान्वेषणे आग्रह एवचेत्तर्हि साक्षात् परमपुरुषार्थ लक्षण विलक्षण फलोपयिकत्वमेवास्य मंत्रराजस्य। अन्य वैदिककर्मकलापस्यतु परम्परया चरमफलप्रयोजकत्वमित्यस्त्यनयोर्विशेषः ।५०।

तथाच यथा–"पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति पशुबन्धयाजी सर्वान् लोकानभिजयति। तरति पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यांयोऽश्वमेधेन यजते य उचैनमेवं वेद" इत्यादौ वेदैकभागब्राह्मणदृष्ट ब्रह्महत्यातरणलक्षणार्थेऽधिकृतस्याश्वमेधस्य वैदिकत्वमूरीचक्रुर्वैदिककर्मठास्तथैव प्रकृतेऽप्यस्य मंत्रराजस्य वेदभागदृष्टफलकत्वादक्षतंषष्ठं वैदिकत्वमिति।५१।

इदमत्रविचार्यतामाश्रयति । भवन्मते मंत्रभागस्य प्रयोगमात्रोपकारकत्वाद्द्रव्यदेवतयोरुपवर्णनमात्रमत्रमंत्रेष्वभिलक्ष्यते । विनियोग प्रयोगानुष्ठानन्तु ब्राह्मणग्रन्थैनैवाखिलकर्ममार्गस्येति । ततश्च-

---

क्या विशेषता है। तो इसका उत्तर यह है कि 'इसमें कोई विशेषता नहीं। वैसेही यहभी वैदिक है। यदि विशेषताही आप चाहते हैं तो सुनिये। वह यह है कि 'श्रीराम मंत्र साक्षात् मोक्षप्रद है। और अन्य वैदिक कर्म परम्परया मोक्ष फल देते हैं। अथवा नहींभी देते। यही विशेषता है ।५०।

इस लिये यह सिद्ध हुआकि जैसे अश्व मेध यागका ब्रह्महत्या विनाशन फल है। यह फल वेदके एक भाग ब्राह्मण भागमेंही है। और इस फलको ब्राह्मण भागमें होने परभी वदिक ब्राह्मणोंने अश्वमेध यज्ञको वैदिक माना है। वैसेही श्रीराम मंत्रकाभी ब्राह्मण भागमें फलश्रुत होनेसे वैदिकत्व निर्विवाद सिद्ध है ।५१।

यहां पर यह विचार हो सकता है कि "आपके मतमें मन्त्रभागको प्रयोग मात्रकाही उपकारक होनेके कारण द्रव्य और देवताकाही वर्णन मंत्र भागमें माना जाता है। विनियोग द्वारा प्रयोगका अनुष्ठान तो ब्राह्मण ग्रन्थसेही

ब्राह्मणोपदर्शितदिशा फलबलाधायकत्वेन वैदिकत्वं यदि नाधिगच्छामस्तर्हि वैदिकपदगोचरतैषतपस्विनी समाकुलास्यादितिसमस्तस्य ब्राह्मणावगतार्थकस्य वैदिकत्वमास्थेयम् ।५२। मंत्राणामपि 'वैदिकोयं मंत्र' इत्याख्यया यथा वैदिकत्व तथा प्रकृतेऽपीति नकिञ्चिन्निगूढम् । अनेनषष्ठकल्पविवेचनेन सप्तमकल्पस्य वेदांशमात्रदृष्टार्थकत्वस्यापि विवेकःसम्पद्यतेतरामिति नाधिकं प्रपंच्यते।५३। नचैवमपि सप्तमकल्पत्वभंगप्रसंगः शक्यशंकः। वेदांशमात्रेत्यादिवकुर्मंत्रभागमात्रे दृष्टप्रयोजनत्वं ज्ञायते। उत्तरयितुश्च मंत्र ब्राह्मणयोरुभयोरपि वेदांशत्वाद्ब्राह्मणभागे दृष्टफलकत्वात्तस्यापिच वेदांशत्वाद् गतार्थता स्पष्टैव। एवंच कल्पकर्तुराशयाकलनेनास्यकल्पस्य सम ञ्जसत्वेऽपि विवेचयितुरुभयोरपिवेदांशप्रत्ययस्य प्रामाणिकत्वेन प्रहितोत्तरतेति तत्तात्पर्यम् ।५४।

सब कर्मोंका मानना होगा। इस अवस्थामें ब्राह्मण भागके अनुसार फल प्रापकतया यदि वैदिकत्व न स्वीकार करें तो वैदिक पदका कोई अर्थही न रहेगा। इस लिये ब्राह्मण भागसे ज्ञात समस्त अर्थवाले कर्म कलापको वैदिक माननाही पडेगा ।५२। मंत्रोंमेंभी 'यह मंत्र वैदिक है' इस समाख्यासे जिस प्रकार वैदिकता मानी गयी है इसी प्रकार श्रीराम मंत्रमेंभी वैदिकता सुतरां सिद्ध है इसमें लेशमात्रभी भेद नहीं है। इस छठे कल्पके विवेचनसे सप्तमकल्पकाभी विवेचन हो जाता है। अतः इसके लिये अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार इस कल्पका अर्थ होनेसे सप्तमकल्पका कोई अर्थ नही रहता यह शंका नहीं करनी चाहिये। सप्तमकल्पविधाताके हृदयमें यह आशय है कि मंत्रभाग मात्रमें फल होना चाहिये। इसी आशयसे सप्तमकल्पकी रचना है। उत्तर दाता मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंको वेदांश मानता है इस लिये ब्राह्मण भागमें फल होनेसे और उसेभी वेदांश होनेसे 'गतार्थत्व' स्पष्टही है। तात्पर्य यह है कि सप्तमकल्पकारको आशयका परिज्ञान न होनेके कारण इस कल्पकी समञ्जसता ज्ञात होती है। परन्तु विवेचन कर्ता मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागोंको वेद मानता है। अत एव वह इस प्रकार उत्तर देता है इस लिये दोनोंका अभिप्राय युक्तियुक्त है।५४।

अथाऽष्टमकल्पक्लृप्तवैदिकत्वं विविच्यते। तद्धिवेदोभयभागदृष्टार्थकत्वरूपम्। एतस्यापिच मंत्रब्राह्मणाख्यवेदांशयोरुभयोरपि प्रयोजनानुसंधित्सयोच्चार्यमाणत्वेनास्त्येव समन्वयोऽस्मिन्मंत्रराज इति निश्चयः ।५५। तथाहि षष्ठकल्पकल्पनायामस्माभिरुपनिषद्रूपवेदैकभागेस्य श्रीराममनोरुपपत्तिः प्रादर्शि। इदानीमपरवेदभागे मंत्ररूपेऽप्युपपत्तिः प्रदर्श्यते। मंत्रभागेऽपिभगवद्रामचन्द्रस्य कथामंत्रमाहात्म्यादिकं कृत्स्नं यथावदुपलभ्यते। अत एव च 'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना। तस्माद्रामायणं देवि ! वेद एव न संशयः। इत्याद्यगस्त्य संहितावचनानि "सतु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदार्थपरिनिष्ठितौ। वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयतप्रभुः। काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीताया श्चरितंमहत् इत्यार्षवचनानिच वेदोपबृंहणप्रयोजनाभिधायिकान्युपपद्यन्ते ।५६।

अब अष्टम कल्पके विषयमें लिखा जाता है। तद्धिइत्यादि कल्पका आकार है। इस अष्टम कल्पकाभी वेदके दोनों भागोंमें प्रयोजनके लिये मंत्रराजको अधीत होनेके कारण ठीकसे समन्वय होता है। इसका विवेचन इस प्रकार है। हमने षष्ठ कल्पके उत्तरमें वेदके एक भाग उपनिषद् रूप ब्राह्मणमें श्रीराम मंत्रकी उपपत्ति की है। अब दूसरे (मंत्र) भागमेंभी मंत्र राजकी सिद्धि दिखायी जाती है। मंत्र भागमेंभी भगवान् श्रीरामचंद्रजी महाराजकी कथा तथा मंत्र और उनका माहात्म्य आदि यथावत् उपलब्ध होते हैं। इसी लिये अगस्त्य संहिताके तथा अन्यभी आर्ष वचनोंकी संगति होती है। अगस्त्य संहितामें लिखा है कि 'वेदसे ज्ञेय परपुरुष श्रीदशरथजीसे अवतार धारण किये और वेदने स्वयं प्राचेतस श्रीवाल्मीकिसे रामायण स्वरूप होकर अवतार धारण किया। इस लिये हे देवि! श्री वा. रा. वेदही है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायणमेंभी—लिखा है कि, ऋषिने कुश और लवको बुद्धिशाली और वेदार्थमें निष्णात देखकर वेदके उपबृंहणके लिये श्रीजानकीजीके महान् चरित्र वाले रामायण काव्यका उन दोनोंको उपदेश दिया। इन सब वचनोंकी संगति उक्त प्रकारसे मानने परही होती है।५६।

एवमेव 'मंत्रह्रदात्कथाकुल्या विद्याकेदारमागता। मोक्षस्यचप्रसूर्मध्ये पीयते कर्ममार्गगैः,रित्यभियुक्तवचनस्यापिसंगतिः।५७। अतएव ऋग्वेदेतृतीयाष्टके पञ्चम्यां सायणभाष्यमपिसंगच्छते। तथाहि—

वीडौसतीरुभिधीरा अतृन्दन्प्राचाहिंन्वन्मनसासप्तविप्राः।
विश्वांमविन्दन् पथ्यांमृतस्यं प्रजानन्नित्ता नर्मसा विवेश ।

(सायणभाष्यम्) पुराकिलांगिरसांगावः पणिनामकैःसुरैरपहृत्य निगूढेकस्मिंश्चित्पर्वते स्थापिताः। ते चांगिरसस्तत्प्राप्त्यर्थ मिन्द्रं तुष्टुवुः। स्तुतश्चसइन्द्रो गवान्वेषणाय देवशुनीं प्राहिणोत्। साचगवां गवेषणपरासती तत्स्थानमलभत। तयाविज्ञापित इन्द्रस्तागा आनीया। गिरोभ्यः प्रादादित्यैतिहासिकी कथा। तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः। धीराः धीमन्तः सप्तविप्रा मेधाविनः सप्तसंख्याका अंगिरसो वीडौदृढेपर्वते सतीर्निरुद्धाः सतीर्गा अभि अभिलक्ष्यातृन्दन् निधानमपावृण्वन् उपेक्षामकुर्वन्। ततस्तेऽगिंरस पर्वतबिले गावः सन्तीति मनसा निश्चित्य प्राचा येन मार्गेण प्रविष्टास्तेनैव प्राचीनेन मार्गेणतागा अहिन्वन्

इसी प्रकार "मंत्र सरोवरसे मोक्षकी देने वाली कथा नलिका द्वारा निकलकर विद्यारूपी क्यारियोंमें प्राप्त हुई है। और वह कर्म मार्ग वालोंसे जलपानके रूपमें उपभुक्तकी जाती है" इस अभियुक्त वाक्यकीभी संगति हुई।५७।

अत एव ऋग्वेदके ३ अष्टकमें पंचमी ऋचाके सायणभाष्यकीभी संगति होती है। मूल मंत्रमें एक इतिहास आया है। वह इस प्रकार है। पूर्व कालमें कभी अंगिरा नामके ऋषियोंकी गायोंको पणिनामके असुरोंने हरण करके किसी पहाड़के गुप्तस्थानमें रखलियाथा। उन अंगिराओंने गायोंकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकी स्तुतीकी। प्रसन्न होकर इन्द्रने उनकी गायोंकी खोजके लिये देव शुनीको भेजा। वह गायोंके पदोंका अन्वेषण करती जहां वहथीं वहां वह पहुंच गयी। और इन्द्रको आकर कह दिया। पश्चात् इन्द्रने उन गायोंको अंगिरा नामके ऋषियोंको प्रदान कर दिया। यह इतिहास मंत्र भागमेंही आया है। जिस प्रकार इस मंत्रमें यह इतिहास मिलता है। इसी प्रकार दूसरे

निरगमयन्। स्तुत्याच। ऋतस्य पथ्यां यज्ञस्यमार्गसाधुभूतां विश्वां सर्वांमपहृतां गामविन्दन्–अलभन्त। ततः सइन्द्रस्ता तानि अंगिरसां कर्माणि प्रजानन् नित् प्रकर्षेण जानन्निद्रोनमस्कारेणांगिरसः संभावयन्तैरधिष्ठितं पर्वतमाविवेश। यथात्रायमितिहासः प्रस्फुटमुपलभ्यते। तथैवान्यत्रापिमंत्रभागेविश्वामित्रस्योत्तितीर्षोर्नदीभिःसंवाद ऐतिहासिक एवोपलभ्यते। एवमस्मिन्नेवाष्टके-'ये पायवो मामतेयम्' इतिमन्त्रेऽपि काचिदृषिसम्बन्धिन्यैतिहासिक्येवकथोपलभ्यते। किं बहुनाम्नायेऽपि विविधकथोपकथनादिपरम्परयेतिहासादिकं वरीवर्तीतिनकिञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् ।५८।

अत्रवेदव्याख्याता नीलकण्ठः। ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्त इमे समासते। इति मंत्रेण सर्वासामृचां सर्वेन्द्रियदेवताधिष्ठानभूतपरमव्योमशब्दितब्रह्मपरत्वावधारणात्। अतद्विदोध्ययनादेर्वैयर्थ्याभिधानाचाध्यात्मपरतयाप्ययं मंत्रो व्याख्येय इति। एवं तुग्रोह भुज्युमश्विनोदमेधे रयिनं कश्चिन्ममृवामवाहाः। तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरंतरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः।,

---

मंत्रोंमें नदियोंको पार उतरनेकी इच्छा वाले विश्वामित्र ऋषि और उन नदियोंका ऐतिहासिक संवादभी मिलता है। एवं इसी तृतीयाष्टकमें "ये पायवो-मामतेयम्" इस ऋचामें किसी ऋषिकी कोई प्रसिद्ध (ऐतिहासिक) कथा लिखी गयी है। किंबहुना मंत्र भाग (संहिता) मेंभी नाना प्रकारकी शतशः कथायें मिलती हैं।५८।

अब इस विषयका वेदके प्रसिद्ध व्याख्याता नीलकंठजीकाही ग्रंथ उद्धृत करके स्पष्टीकरण किया जाता है। 'ऋचो अक्षरे' इस मंत्रसे सब ऋचाओंको सब इन्द्रियोंके अधिष्ठान स्वरूपपरब्रह्मवाचकत्वही निश्चित है। जो परमात्मतत्वको ऋक्प्रतिपाद्य नहीं जानता उसका अध्ययन व्यर्थ है। यहभी इसी श्रुतिमें कहा है। इस लिये आत्मतत्व विषयभी मंत्रसे कहा जाता है।

इत्यत्रकथामालम्ब्यदेवता स्तूयते तत्रालम्बनीभूतानां तुग्रादिपदार्थानामनित्यानां संयोगेन वेदस्यापौरुषेयत्वं माबाधिष्ट इति देवताधिकरणेऽवान्तरतात्पर्येण तेषां प्रतिकल्पं समाननामरूपाणामुत्पत्तिमभ्युपगम्य व्रीह्यादिपदार्थानामिव प्रवाहानादित्वमुक्तम् ।

चमसाधिकरणेत्वेवं जातीयकानां कथारूपकेण ब्रह्मविद्यायां मुख्यं तात्पर्यमितिनिश्चीयते । तत्रहि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" इत्यादि मंत्रेषु अजादिशब्दानां श्रौतार्थपरिग्रहे मंत्रस्याधिगतार्थगमकत्वेनाप्रामाण्याद्वैयर्थ्यंमाभूदिति तेषां 'न जायत, इति योगेन मूलप्रकृत्यादिप्रतिपादकत्वमाशंक्य मण्डपं भोजयेत्यादौ मण्डपस्थजनवन्मण्डपायिनो झटित्यनुपस्थानेन रूढिपूर्वकलक्षणातो योगस्यदुर्बलत्वात् छान्दोग्यस्थानां रोहितादिरूपाणामन्यत्रेत्यभिज्ञानात् पराभिमतप्रकृतिग्रहणे विशेषहेत्वभावाच्च तेजोबन्नात्मिकाभूतप्रकृतिरजेवाजेतिअजारूपकेणात्र प्रतिपाद्यत इति सिद्धान्तितम् ।

इसी प्रकार 'तुग्रोह' इत्यादिमंत्रमेंभी एक कथा लेकर देवताकी स्तुति की गयी है। इस मंत्रमें तुग्रादि पदार्थोंका प्रतिपादन है और उन्हें अनित्य होनेके कारण वेदको पौरुषेय बनादेंगे यह शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि वेदान्तके देवताधिकरणमें समान नामरूपवाली प्रतिकल्पमें उत्पत्ति स्वीकार करते हुए व्रीहि आदि पदार्थोंके समान उन सबको प्रवाहानादिता मानी हैं।

चमसाधिकरणमेंभी इस प्रकार कथा रूपकसे ब्रह्मविद्यामेंही तात्पर्य सिद्ध किया है। वहांपर 'अजामेकाम्' इत्यादिमंत्रमें आये हुए अजादि शब्दोंके लिये यदि श्रौत अर्थका ग्रहण कियाजावेतो प्राप्त अर्थका ज्ञापक होनेके कारण अप्रामाण्य होनेसे वेदको व्यर्थता होगी। इस व्यर्थताके रोकने लिये 'जो उत्पन्न नहो, ऐसी प्रकृतिको अजापदसे लिया जावेतो अप्रामाण्य प्रयुक्त वैयर्थ्य नहोगा। किन्तु जैसे मण्डपको भोजन दो' इस वाक्यके दो अर्थ होसकते हैं 'मण्ड (छाछ) पीने वाला एक, और दूसरा मण्डपके भीतर बैठे हुए समस्त मनुष्य। इन दोनों अर्थोंमें 'मण्डपीनेवाले–अर्थकी शीघ्र उपस्थिति नहीं होती परन्तु दूसरे अर्थकीही शीघ्र उपस्थिति होजाती है। तात्पर्य यह है कि,

एवं रामायणस्य तन्मूलभूतानां मंत्राणांच अवान्तरतात्पर्येण कथापरत्वं महातात्पर्येणविद्यापरत्वंच वक्तुं युक्तम् ।

ननु'सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति' इतिनामानिसर्वाणियमाविशन्ति 'योदेवानां नामधा एक एव' इत्यादि श्रुतिभ्यः परमतात्पर्यविषयीभूतस्यरामस्य सर्वैर्देवतावाचकैः शब्दैः अभिधानं युक्तम् ।

अवान्तरतात्पर्येतु व्यवस्थाया आवश्यकत्वान्नान्यदैवत्योमंत्रो रामकथां प्रकाशयितुमीष्टे। अथ हठात्तत्परत्वंवर्ण्यतेतर्हि एकस्य शब्दस्यानेकार्थतास्यात् साचानिष्टेति चेत्। उच्यते यथा एकैव रेखास्थानभेदात् एकादश शतसहस्रादिव्यपदेशान् लभते एवमेकमेव पदंवाक्यंवा पदान्तरवाक्यान्तरसमभिव्याहारादनेकमर्थं प्रत्याययति नच तावतानानार्थत्वं शब्दस्यसंभवति, अपितुवृत्तिभेदएव । तथाहि एक-

---

योगलभ्य अर्थकी अपेक्षा रूढि प्राप्त अर्थ शीघ्रही हृदयमें आजाता है । अत एव द्वितीय अर्थकाही ग्रहण होता है। इसलिये यहांपरभी सांख्यमत सिद्ध प्रकृति नहीं लेकर तेजजल पृथिवी इन भूतोंकी जोप्रकृति है वहीली जात्ती है।

इसी भूत प्रकृतिका अजारूपकसे प्रतिपादन है" यह सिद्धान्त किया है।

इसी प्रकार रामायणके अर्थप्रतिपादक मंत्रोंकोभी अवान्तर तात्पर्यसे कथा प्रकाशक 'और महा तात्पर्यसे विद्या प्रकाशक मानना चाहिये ।

यहांपर यहशंका होती है 'सर्वेवेदा' इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे परमतात्पर्य विषयी भूत श्रीराम परब्रह्मका सब देवता वाचक शब्दोंसेभी कथन युक्त है। परन्तु अवान्तर तात्पर्यमेंभीतो व्यवस्था करना आवश्यक है। इस पक्षमें अन्यदैवत्यमंत्र रामकथाका किस प्रकार प्रकाशन करेगा। यदि हठसे रामकथाकाभी प्रकाशक मंत्र होसकेगा यह कहोगेतो अनेकार्थत्वरूपदोष होगा। यह दोष अनिष्ट है।

इस शकाका समाधान यह है कि "जैसे एकही रेखा स्थानोंके भेदसे एक, दश, शत एवं सहस्र इन व्यपदेशोंको धारण करती है। इसी प्रकार एकही पद अथवा वाक्य दूसरे पदकेवा वाक्यके साथ पड़जानेसे भिन्न अर्थकाभी बोध करता है। एसा होनेसे उस पदको नानार्थक नहीं कहाजाता।

मप्यमृतपदम् "यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः। अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते॥" इत्यत्रकैवल्यवाचि "अपाम सोममममृता अभूम" इत्यत्र देवभाववाचि "प्रजामनुप्रजायसे तदुते मर्त्यामृतम् इत्यत्र संतानवाचिदृष्टम्। यथावा यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा" इति वाक्यम् "अबध्नन्पुरुषं पशुम्' इत्यव्यवहितातीतमंत्रावयवेन जीवस्य सूक्तदेवतालोचनयापरमेश्वरस्य चोपस्थितेर्जीवो ब्रह्मणि प्रविलापनीय इत्यर्थं पर्यवस्यति, तदेव "तंयज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्, मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च" इत्येताभ्यां वाक्याभ्यामन्वीयमानं बर्हिःस्थेन पशुसोमादिना इन्द्राग्न्यादयो देवतायष्टव्या इतिब्रवीति तदेवाग्निमंथनीयानामृचां परिधानीयायां विनियुज्यमानम् "यज्ञेनैवतद्देवायज्ञमयजन्त यदग्निनाग्निमयजंत" इतिब्रह्मणे व्याख्यातमर्थं ब्रवीति। तत्राध्यात्मिकोर्थो मुख्यः उपेयत्वात्। अधिदैविकस्तु तत्प्रत्यासन्नत्वादमुख्यः। तृतीयस्तु सन्ततावमृतत्ववद् ध्यानयज्ञांगभूतकर्मयज्ञांगयोरग्न्योर्यज्ञत्व-

---

किन्तु वृत्ति भेद माना जाता है। जैसे एकही 'अमृत' पद 'यदासर्वे' इस श्रुतिमें कैवल्य (मोक्ष) वाचक है। 'अपामसोम, इस श्रुतिमें देवभाव वाचक है। और 'प्रजामनु प्रजायसे, इस वेदमंत्रमें सन्तानवाचक है। जैसे 'यज्ञेने यज्ञम, इत्यादि वाक्यका 'अबधनन, इत्यादि मंत्रके अवयवार्थका विचार करने पर जीवकी और सूक्त देवताके विचार करने पर परमेश्वरकीभी उपस्थिति होने पर 'जीवका ब्रह्मके साथ तादात्म्य मानना चाहिये, इस अर्थमें पर्यवसान होता है। तं यज्ञं बर्हिषि, 'मुखादिन्द्र श्चाग्निश्च, इन दोनों वाक्योंके साथ अन्वित होने पर बर्हिस्थित पशु सोमसे इन्द्र और अग्नि आदि देवताओंका यजन करना इस अर्थका बोधन करता है। और वही अग्नि मंथनीय परिधानीय और ऋचाओंके साथ विनियुक्त होकर 'यज्ञेनैव तद्देवा,, इत्यादि ब्राह्मणसें कहे हुए अर्थका प्रत्यायक होता है।

इनमें उपेय होनेके कारण आध्यात्मिक अर्थही मुख्य है। आधिदैविक अर्थ तत्प्रत्यासन्न होनेके कारण अमुख्य है। और तीसरा ध्यान यज्ञके अंग-

मतिजघन्यं भवति। तथा इन्द्रादिशब्दोऽपिबलवता रामलिङ्गेनोपहितः तमिदंइन्द्रं सन्तमिद्र इत्याचक्षते। इदि परमैश्वर्ये इति श्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टंमुख्यवृत्त्यास्वार्थमभिधत्ते। स एव देवता लिंगोपहितस्तत्प्रत्यासन्नं शचीपतिं ब्रवीति। लक्षणयासएव पुनः 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठेत इतिश्रुत्या गार्हपत्योपस्थाने विनियुक्तायामृचिदृष्टो गौण्यावृत्त्यागार्हपत्यमभिधत्ते। किञ्चान्यत्ररूढोऽपिशब्दो लिंगबलादन्यमर्थं ब्रवीति। यथा सर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त इति सर्वभूतोपादानत्वलिंगान् भूताकाश परोऽपि आकाश शब्दो जगत्कारणंब्रवीति। तस्मादवान्तरतात्पर्यविषये कथाया बलवल्लिंगोपहितोऽन्यदैवत्योऽपिममन्त्रो राममेव ब्रवीति। नचानेकार्थतादोषः परिहृतत्वात्,

इति भाष्यकृन्नीलकंठाचार्योक्तदिशा संहिताभागेऽपिउपास्यदेवमंत्रादिवर्णनं युज्यत एव। नचैककर्मणिविनियुक्तामंत्रा कथमन्यत्र चारितार्थ्यमुपगच्छेयुरितिवाच्यम्। एकस्मिन्नेवप्रतिपत्तृभेदेन प्र-

---

भूत कर्मयज्ञीय अग्नियोंको यज्ञत्व कहने वाला अर्धजघन्य है 'जैसे संततिमें 'अमृत, पदका प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार इन्द्र शब्दभी लिंग बलात् 'इदि परमैश्वर्यें' इसधातुसे बननेके कारण मुख्य वृत्तिसे श्रीरामरूप स्वार्थका बोधक है। वही देवता लिंगबलसे शचीपतिको कहता ह। और 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते, इस प्रत्यक्ष श्रुतिसे गार्हपत्याग्निके उपस्थानमें विनियुक्त होनेके कारण गौणवृत्तिसे गार्हपत्य रूप अर्थका बोध करता है।

औरभी सुनिये—अन्य अर्थमें रूढ शब्दभी लिंगबलसे अन्य अर्थका बोध करता है। जैसे 'सर्वाणि हवाभूतानि—आकाशादेव समुत्पद्यन्ते, इस वाक्यमें भूताकाश वाचक आकाशपदका अर्थ सर्वभूतोपादानत्व रूप लिंगसे जगत्कारण होताहै। अतः अवान्तरतात्पर्य वशात् लिंगबलसे अन्यदैवत्यभी मंत्र श्रीराम वाचक होसकता है। इस प्रकार भाष्यकार नीलकंठ आचार्यके कथनानुसार

तिपत्तिभेददर्शनात्। यथा ह्येकं घटं कश्चिदसत्वेनकश्चित्सत्त्वेन कश्चिदनिर्वचनीयत्वेन तर्कबलात्प्रत्येति। यास्कोऽपि "बहुप्रजा:निर्ऋतिमाविवेश" इत्यस्यबहुप्रजा: कृच्छ्रमापद्यत इति परिव्राजका: वर्षकर्मेति नैरुक्ता इत्येकमेव निर्ऋतिपदं द्वेधाव्याचष्टे। तस्मादस्ति प्रतिपत्तिभेदादर्थभेदोमंत्राणामिति। एवमग्रेऽप्यभिदधौ ननुरामायणीया कथा कस्यांचिदपिशाखायां वृत्रवधादिवन्न दृश्यतेऽतोस्या:श्रुतिमूलत्वमेव नास्तीतिचेन्न, नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति' इतिन्यायेन त्वयि वेदार्थानभिज्ञे सति न रामायणमपराध्यति। ननुवेदभाष्येऽपि न रामायणकथासूचकत्वं कस्यचिदपिमंत्रस्य पश्याम इति चेत्। नैषदोष: विनियोगानुसारिण: कर्मस्वव्युत्पादनार्थस्य भाष्यकारीयव्याख्यानस्य निगमनिरुक्तानुसारि तात्त्विक व्याख्यानादूषकत्वात्। किञ्चात्यल्प-

---

संहिताभागमेंभी उपास्य देवके मंत्रोका वर्णन युक्तही है। यह शंका निर्मूल है कि एक कर्ममें विनियुक्त मंत्र अन्य प्रतिपादन कैसे करसकता है। प्रतिपत्ता के भेदसे एकही वस्तुम प्रतिपत्तीमें भेद होसकताहै। जैसे एकही घटको कोई असत् रूपसे कोई सत् रूपसे और कोई अनिर्वचनीय रूपसे तर्कबलसे जानताहै। यास्काचार्यनेभी 'बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश' इस निर्ऋतिपदका दो प्रकारसे व्याख्यान किया है। परिव्राजकमतसे कष्ट अर्थ है और नैरुक्तके मतसे वर्ष कर्म अर्थ है। इससे प्रतिपत्ति (ज्ञान) भेदसे मंत्रोंके अर्थमेंभी भेद होता है। इसी प्रकार नीलकण्ठाचार्यजीने आगेभी कहा है कि, वृत्रवधकी कथा जिस प्रकार वेदमें उपलब्ध होती है इस प्रकार रामायणीय कथा वेदकी किसी शाखामेंभी उपलब्ध नहीं होती। इसलिये इसे श्रुतिमूलता कैसे मानी जावे, इस शंकापर आप समाधान करते हैं—'यह कोई स्थाणु (स्तम्भ) का अपराध नहीं है जो इसे अन्धा नहीं देखता' इस न्यायानुसार तुम स्वयंवेदार्थके अनभिज्ञहो तब रामायणकी कथाका क्या अपराध है। फिरभी यह शंकाहो कि, वेद भाष्यमेंभी रामायण कथा सूचकता किसी मंत्रको नहीं बतायी गयी तो इसका समाधान सुनिये। भाष्यकारीयव्याख्यान विनियोगके अनुसार है वह निगम और निरुक्तके अनुसार किये गये वास्तविक व्याख्यानका दूषक नहीं होसकता।

मिदमुक्तमायुष्मता मंत्रार्थवादैरपि कर्मणि रुच्युत्पादनार्थमनुपपन्नो ऽप्यर्थः प्रजाया अमृतत्वमात्मवपोत्खननमित्यादिरुपन्यस्यते। "प्रजामनुप्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत् इति च। एवं च कर्म स्तावकार्थवादानुसारि भाष्यकारीयं व्याख्यानममुख्यम्। अत एवोक्तम्भारते-"इतिहासपुराणाभ्यामित्यादि। तत्र उपबृंहणं नाम"-एकत्र मंत्रे तृचे सूक्ते वा दृष्टस्यार्थस्य संक्षिप्तस्य नानास्थानेषु विप्रकीर्णानां तदनुगुणानामर्थानामुपसंहारेण पुष्टीकरणम्। तच्च येन कर्ममात्रं नश्रुतंतेनकर्तुमशक्यम्। अतस्तस्मादल्पश्रुताद्वेदस्य भयंयुक्तम्। भगवानपि "यामिमां पुष्पितांवाचम्"इत्यादिनार्थवादानां मोहकत्वं ब्रुवन् तदनुसारिणो व्याख्यानस्यानादरणीयत्वंदर्शयति। मंत्रवर्णा अपि निहारेण प्रावृता जल्प्या च इति अल्पो जल्पो जल्पी तुच्छार्थप्रतिपादिका वाक् तया प्रावृता इति अज्ञानेनार्थवादैश्च वंचिताः। नन्वेवं तिष्ठतु भाष्यकारीया मर्यादा द्रव्यदेवतादि प्रका-

और यहभी आप अल्पही कहते हैं। सुनिये। मंत्र और अर्थवादमेंभी कर्ममें रुचि उत्पन्न करनेके लिये अनुपपन्नभी प्रजाको अमृतत्व, और आत्मवपाका निकालना आदि अर्थोंका उपन्यास किया है। "प्रजामनु" इस श्रुतिसे। इससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मकी स्तुति करनेके लिये जो अर्थवाद हैं उनका अनुसरण करनेवाला भाष्यकारीय व्याख्यान अप्रधान है। इसी लिये महाभारतमें कहाभी है कि, इतिहास और पुराणोंसे वेदका उपबृंहण करना चाहिये इत्यादि। एक जगह मंत्रमें तृचमेंवासूक्तमें अति संक्षिप्तरूपसे देखे गये अर्थका अन्य अनेक स्थानीय तदनुसारीय अर्थसे पुष्ट करनेको उपबृंहण कहते हैं। अतः जिसने समस्त कर्म नहीं जाने हैं वह उपबृंहण नहीं करसकता। ऐसे अल्प श्रुत पुरुषसे वेदको भय ठीकही है। भगवान् गीतामें स्वयं 'यामिमां' इत्यादि वाक्यसे अर्थवादोंको मोहक बताते हुए अर्थवादानुसारि व्याख्यानको अनादरणीय सूचित करते हैं। इसी प्रकार मंत्रवर्णभी 'नीहारेण' इस वाक्यसे 'अर्थ-
[illegible]

शनद्वारा विध्यर्थं स्मारयतो मंत्रजातस्य कथं कथासूचकत्वमुपपद्यत इतिचेत्सुतरामितिब्रूमः।

तथाहि सर्वोऽपि मंत्र आध्यात्मिकीमाधिदैविकींवा कथामुपजीव्यैव कर्मांगं स्तुवन्विध्यर्थं स्मारयति। यथा "यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन्। ततस्त्वामेकविंशतिधा संभरामि सुभृतम्" इतिमंत्रः कृष्णाख्यब्रह्मरूपस्त्वं रूपप्रपंचं निर्माय स्थावरजंगमात्मकं तंप्रविश्य तत्रतद्वस्तु तादात्म्यापत्त्या समिद्रूपोऽसि ततो हेतोः त्वां एकविंशतिधा संभरामीति। तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्चत्यश्चाभवत्। इति ब्राह्मणोक्तकथाप्रदर्शनपूर्वकं समिधां कृष्णभावमापादयन् तासां संभरणं स्मारयति। यथावा "यस्यरूपं बिभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टां सरितस्य मध्ये। तस्येदं विहतमाभरंत इति मंत्रो यस्य वराहस्य रूपं धारयन् परमेश्वरः भूमिं समुद्रमध्ये निगूढस्थाने प्रविष्टामलभत्। तेनेदमुत्खातं मृत्खण्डम् आभरन्तो वयमिति वराहावतारकथाप्रदर्शनपूर्वकं वराहविहितं स्तुवन् तत्संभरणं स्मारयति। एतेनैव प्रकारेण 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादयोऽपि मंत्रा

व्याख्यान जानेदो, पर द्रव्य देवताको प्रकाशित करके विध्यर्थका स्मरण कराने वाले मंत्रोंको कथा सूचकता कैसे कही सकती है। तो अवश्य कही जा सकती है यही उत्तर है। सुनिये। सब मंत्र आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक कथाको लेकरही कर्मांगकी स्तुति करते विध्यर्थका स्मरण करते हैं। जैसे 'यत्कृष्णोरूपम्, यहमंत्र कृष्णरूप ब्रह्म आप स्थावर जंगमको स्वयं निर्माण करके और उसमें प्रविष्टहोकर उसवस्तुके साथ अभिन्न होनेके कारण आप समित् रूपहो इस लिये आपको इस प्रकारसे संभरण करता हूं। इस प्रकार 'तत्सृष्ट्वा' इत्यादि ब्राह्मणोक्त कथा प्रदर्शन पूर्वक समिधाको कृष्णत्व कहते हुए उनका संभरण कराता है। जैसे "यस्यरूपं" यह मंत्र बराहावतारकी कथाको दिखाता हुआ वराहविहितकी स्तुति करता हुआ उनका संभरण कराता है। इसी प्रकार 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादिमंत्रोका व्याख्यान करलेना चाहिये।

व्याख्येयाः। तत्रहि "इषेत्वोर्जेत्वा" इति 'शाखामाच्छिनत्ति' इति-विनियोगात् हे शाखे! भो स्वसृष्टशाखान्तः प्रवेशेन. तत्तादात्म्याप-न्नपरमेश्वर! त्वां इषे अन्नाय 'अन्नंविराट्' इतिश्रुतेर्विराड्भावाय 'उर्जे रसाय'रसोवैसः, इतिश्रुतेः परमानन्दप्राप्त्यैव छेदनेनावाप्न-वानीति।

एतेन 'ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिन्सीः, शृणोत ग्रा-वाणः, लोमभ्यः स्वाहा,

चंक्रमणाय स्वाहा इत्यादयोऽचेतनार्थे संबन्धोऽचेतनप्रवेशात-त्तादात्म्यापत्तिपरतया व्याख्येयाः। एवंहिव्याख्याने क्रियमाणे 'पुरुष एवेदं सर्वम्' सर्वं खल्विदंब्रह्म' सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति' इमानि सर्वाणि यमाविशन्ति, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादयः श्रुतयः सर्वस्यात्ममात्रत्वं सर्वेषां शब्दानां तत्प्रतिपादनपरत्वंच दर्शयन्त्यः समंजसा भवन्ति। तत्रयः संभरणादिकं कर्मैव प्रशंसति स कर्मठोऽल्पश्रुतः, योवराहंसउपासको मध्यमः, यः कृष्णं सतत्वज्ञ उत्तमः, कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डानामुत्तरोत्तरस्य प्रशस्तत्वात्, नहि येन संभरण-

---

'इषेत्वा' इसका शाखाच्छेदनमें विनियोग है। इस लिये अर्थ यह होगा कि हे शाखे! अर्थात् शाखान्तर्यामी परमेश्वर! तुम्हें अन्नके लिये अर्थात् अन्नद्वारा परमानन्द प्राप्तिकेलिये छेदनसे आपके प्राप्तिके लिये छेदनसे आपको प्राप्तहोताहूं। इसी प्रकार ऊर्जेत्वा इसकाभी अर्थ है। इससे 'ओषधे! त्रायस्वैनं०' इत्यादि अचेतनोंका वर्णनभी चेतन प्रवेश द्वारा उनके साथ तादात्म्यहोनेसे व्याख्यान सम्पन्नहोता है। इस प्रकार व्याख्यान करनेपर 'पुरुषएवेदं, इत्यादि समस्त श्रुतियां समन्वित होती हैं और 'सर्वेषां शब्दानां परमात्मन्येव पर्यवसानं यह सिद्धान्तभी संगत होजाता है। इसमेंजो कर्मठ केवल कर्मकीही प्रशंसा करना मानता है वह अल्प श्रुत है। जो वराह आदिका उपाशक है वह मध्यम है। और जो कृष्ण तत्वका ज्ञानवान् है वह उत्तम है। क्योंकि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डोंमे उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। क्या कभी ऐसा संभव

स्य महत्वंसोऽर्थः संभरणादमहानिति संभवतीति सहृदय ग्राह्यमे-तत् तत्रैवं सति भाष्यकारीयं व्याख्यानं हे शाखे त्वां लौकिकयोर-न्नरसयोः प्राप्त्यर्थं छिनद्मीति क्रियमाणच्छेदन प्रशंसार्थम् ईदृशमिदं शाखाच्छेदनं येनान्नरसौ लभ्येते इति सोयमर्थः कर्मजडानां रुचि-करोपि पूर्वोक्तस्यार्थस्य प्रत्यक्षश्रुतिशिखरमूलस्य सहृदयग्राह्यस्य न बाधकः। किञ्च, विनियोगमात्रात्स्वार्थमुत्सृज्य केवलकर्मपरत्वं मं-त्रस्य नवक्तुं शक्यते। तथाहि "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्॥ समूढमस्यपांसुरे" इत्ययंमंत्रः वाग्नियमलोपप्रायश्चित्तार्थमाज्यहोमे वैष्णवोपांसुयाजस्य पुरोनुवाक्यत्वेन च विनियुज्यते, न चात्र तदनुकूलं किंचिल्लिंगं दृश्यते येन विनियोगभेदेन व्याख्यान भेदोत्र-कल्पयितुं शक्यते, इदं त्रैलोक्यं पदत्रयेण विष्णु रतिक्रान्तवान्न तच्चि-त्रं यतस्तदस्य पांसुमतिपदे पांसुरूपेण सम्यगारूढमिति। न चैतेषांव्या-ख्यानम् "इषे त्वा" इति वद्विनियोगमात्रविदा पुष्करवराहवामन

है कि जिससे संभरणको महत्व प्राप्तहो वह वस्तु संभरणसे अपकृष्टहो। इसको चतुर मनुष्यही जान सकते हैं इस अवस्थामें भाष्यकारीय व्याख्यान कि हे शाखे! मैं तुम्हें लौकिक अन्नरसकी प्राप्तिके लिये छेदन करताहूं। यह केवल प्रशंसार्थक है कि यह शाखा छेदन ऐसा है जिससे ऐसे सुंदर रसकी प्राप्ति होती है। यह अर्थ कर्मजडोंको रुच्युत्पादक होनेसेभी प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक हमारे कथित अर्थका बाधक नहीं है। दूसरीवात यहभी है कि विनियोग मात्रसे केवल कर्मपरत्वही मंत्रको मानलेनाभी ठीक नहीं उसका स्वार्थतो अवश्य माननाही चाहिये। जैसे 'इदं विष्णु' इस मंत्रका विनियोग वाणी नियमलोप प्रायश्चित्तके लिये जपमें, सर्वप्रकारके प्रायश्चित्तकेलिये आज्यहोममें, और वैष्णव उपांसुयाजके लिये पुरोनुवाक्यामें होता है। पर, इसमें इनकर्मोंके लिये कोई लिंग नहीं देखाजाता कि, जिससे विनियोगभेदसे व्याख्यान भेद किया जावे। अर्थ यह है कि इस त्रैलोक्यको तीनपदसे विष्णुने अति क्रमण किया है। यह इसके लिये चित्रनहीं क्योंकि यह त्रैलोक्य इसके धूलवाले पदमें पांसु (धूल) रूपमें निविष्ट हैं। इन सबका व्याख्यान 'इषेत्वा' इत्यादिके समान केवल विनियोग जाननेवाला पुष्कर, वराह, वामन, आदिके इतिहासको न जानने वाला कैसे कर सकता है।

प्रादुर्भावान् ऐतिहासिकानजानता कर्तुं शक्यमिति। तस्माज्जडानां कर्मसु यथाकथञ्चित् रुच्युत्पादनार्थो भाष्यकारमते वेदे रामकथाया अदर्शनेऽपि निगमनिरुक्तोपबृंहणादिसिद्धायास्तस्या अपलापायोगात् अव्युत्पन्नाग्राह्यत्वेऽपिव्युत्पन्नग्राह्यत्वात्सिद्धं रामायणस्य श्रुतिमूलत्वमतस्तन्मूलमन्त्रेष्वपि रामायण इव कथांशःप्रत्यक्षवृत्त्यालभ्यते। अध्यात्मांशः परोक्षवृत्त्येतीत्यादि महताप्रबन्धेनाम्नायस्यापि श्रीरामकथामंत्रमहात्म्यादिप्रकाशकत्वसुपपद्यते सुतरामित्युपपादयति। अत एव च सः काश्चिदृच श्रीरामायणकथाप्रकाशनपरतयाव्याचख्यौ। एतदत्रोक्तं भवति। नाहमत्रावेशादेकाक्येवप्रयते। किन्त्वपरैरपिविद्वद्भिरस्मिन्विषयेऽसकृल्लेखनी व्यापारितैवेत्यतोत्र केषाञ्चिद्विचिकित्सोदीयाच्चेत्त एव पर्यनुयोज्याः। तस्माद्वेदकल्पपादपसंश्रयाद्यद्यत्कामयते

इस लिये जडों (एकही ओरके पदार्थको समझनेवालों) को किसी प्रकार रुचि उत्पन्न करानेके लियेही ऐसा व्याख्यान किया है। यद्यपि वेदमें रामायणकथा भास्यकारके मतसे नहींभी है तथापि निगम निरुक्त इतिहास और पुराणादिसे सिद्धपायी जाती श्रीरामकथाका अपलाप नहीं कर सकते। वह अव्युत्पन्न जनसे अज्ञातभी हो पर व्युत्पन्न विद्वान् तो वेदमें श्रीरामकथाका स्पष्टतया अयगम करतेही हैं। इससे श्रीरामायणको श्रुति मूलता सिद्ध हुई। अत एव वैदिक मन्त्रोंमेंभी श्रीरामायणके समानही कथाभाग प्रत्यक्षवृत्तिसेही कहा गया है। और आत्मसम्बन्धी अर्थ परोक्षवृत्तिसे कहा गया है।

इस लम्बे प्रबन्धसे नीलकण्ठाचार्यने "वेदकोभी श्रीरामकथा, मंत्र और तन्माहात्म्य आदिका प्रकाशकत्व अच्छी प्रकारसे उत्पन्न होता है" इसका उपपादन किया है। इसी लिये वह स्वयं कुछ ऋचाओंद्वारा श्रीरामायणकी कथाका प्रदर्शन करते हुए उनका व्याख्यान करते हैं। इससे यह फलिज हुआ। मैं इस विषयमें अकेलाही किशी आवेशवशात् कोई प्रयत्न नहीं कर रहा हूं। किन्तु अन्य विद्वानोंनेभी इस विषयमें मुहुर्मुहुः अपनी लेखनी उठाई है। अतः इस विषयमें किसीको संदेह होतो वेही महानुभाव उनके प्रश्नके कर्म हो सकते हैं। इससे प्राचीनोंसे

तत्तदुपलभ्यत इति प्राचामुपचितः पन्थाः। एवञ्चात्रपूर्वं नीलकण्ठाचार्यैर्वर्चिश्रीराममंत्रः प्रादर्शि। अन्यैश्चास्मत्पूर्वजैः साम्प्रदायिकैस्तथैवतस्यामेवर्चि राममन्त्रमाकलय्यसमुद्घाट्य व्याख्यातस्तथाहमपि प्रदर्शयामि। अयंमन्त्रऋक्संहितायामेवविद्यते।

सचंत यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आयन्नक्षत्रंददृशे दिवोन पुनर्यतो नकिरद्धानुवेद। (अ.८ अ.६ व.११)

उपासनायां मंत्रमंत्रार्थयोरनुसन्धानमेव प्राधान्यमावहतीत्येतदाविष्करोति-सचंत इति केतवो-ज्ञानवन्तोऽस्य-रामस्य रां-सम्पदं 'ऋचःसामानि यजूंषि' 'साहि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतांत्रयीं तत्सारभूतप्रणवरूपां शब्दतोऽर्थतश्चाविन्दन् यस्त्वत्र शब्दमय्यां सम्पदि उकारो नास्तीति मन्यते तम्प्रत्येवं वदेत् यत्-यतः उषसः-उषसम् उषोवदल्पप्रकाशम् विराजं अकाररूपं सूर्येण-पूर्णप्रकाशेन हिरण्यगर्भेण

यह निश्चित हो चुका हैकि वेदरूपी कल्पवृक्षके आश्रयसे जोजो इच्छाकी जावे वह सब पूर्णही होती है। अर्थात् वेद भगवानसे सब अर्थोंकी सिद्धि होती है। अतः श्रीराममंत्रके विषयमें पहले नीलकण्ठाचार्यनेही ऋचाको दिखाया है। और हमारे सम्प्रदायाचार्योंनेभी इसी ऋचामें श्रीराममन्त्रका उपपादन किया है और उसका व्याख्यानभी किया है। इसी प्रकार मैंभी ऋचामें श्रीराममंत्रहै इसे स्पष्टतया प्रदर्शित करता हूं। जिस ऋचामें श्रीराममंत्र है वह ऋक्संहितामें है। उपासनामें मंत्र और मंत्रके अर्थका अनुसन्धान करना प्रधान माना जाता है इसको प्रस्फुट करते हैं। सचंत इस ऋक्से—केतवः अर्थात् ज्ञानवाले विद्वानोंने इस रामकी रां—सम्पत्तिको ऋक्साम यजुर्वेदरूप एवं "वह सज्जनोंकी लक्ष्मी है अमृत है" इत्यादि वेदवचनोंसे कहा है। वेदत्रयीको सारभूत प्रणवरूप है इसको शब्दसे और अर्थसेभी अविन्दन-जान लिया है। जो कोइ यह कहै कि इस शब्दमयी सम्पत्तिमें उकार नहीं है। उसके प्रति यह उत्तर है कि उषसः—उषा प्रातःकालके समान अल्प प्रकाशक जो विराड् है वह अकाररूप, सूर्यके साथ अर्थात् पूर्णप्रकाश उकाररूप हिरण्यगर्भके साथ सचन्त—ऐक्य

उकाररूपेण सचन्त–ऐक्यमनयन् कार्यत्वसामान्यादकारमध्ये एव उकारस्यान्तर्भावो बोध्यः। एवमपि अमित्येवापेक्षितं नतु रामित्यत आह चित्रामिति-चित्रभानुत्वाच्चित्रो अग्निः रेफःसोऽस्यास्तीति चित्रा सस्वरशब्दवतीं ततः सवर्णदीर्घे रामित्यर्थः। चित्रशब्दात्स्थूलसूक्ष्मकारणानि रामित्यनेन दर्शितानि अर्धमात्रातु प्रणववदत्राप्यन्तरस्तियां रां केतवोऽविन्दन् सापुनर्ददृशे रामिति रेफाकारमकाराः पुनर्दृश्यन्त इत्यर्थः। तत्रदृष्टान्तो-दिवो नेति। नेत्युपमार्थः। दिवः स्वप्नः स्वल्पं प्राप्य यथा जागृद्दृष्टमेवार्थजातं पुनस्तत्सदृशं दृश्यते तद्वत्समष्टित्रयवाचकाद् रांपदात् क्रमेण सदृशव्यष्टि स्थूलसूक्ष्मकारणवाचि रामितिपदं पुनः पठेदित्यर्थः।

अस्य विशेषणं—आयन्नक्षत्रमिति। आ इति स्वरूपं य इव आचरतीति यत् आचारक्विबन्तात् यत् धातोः कर्तरिक्विबिति

को प्राप्त होकर स्थित है। अर्थात् कार्यत्व सामान्यसे अकारमेंही उकारका समावेश है। ऐसा होनेपरभी अम् यही निष्पन्न हुआ। 'राम्' नहीं इसपर कहते हैंकि चित्राम्—चित्र अग्निका वाचक है तद्बीजरेफ है वहरेफ सस्वर स्वर विशिष्ट होनेपर और अम् के साथ सवर्णदीर्घ कर देनेपर 'राम' यह पद होता है। चित्र शब्दमें मत्वर्थीय अच् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय है। अर्थ यह हैकि रेफार्थ अग्निरूप चिदाभासके साथ समष्टि स्थूल और सूक्ष्म कारणोंका इस 'राम्' पदसे प्रदर्शन हुआ। अर्धमात्रा जो ओंकारमें मानी जाती है वह इस 'राम्' पदमेंभी विद्यमान है। सापुनर्ददृशे—अर्थात् रेफ अकार उकारविशिष्ट) अर्धमात्रात्मक मकार सिद्ध हुए। इसमें दृष्टान्त है दिवोनेति–न उपमार्थक है। जैसे स्वप्नमें जागृत अवस्थाके देखे पदार्थही फिरसे देखे जाते हैं इसी प्रकार समष्टित्रयके वाचक रां पदसे क्रमसे व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारणवाचि 'रां' इस पदको फिरसे पढना चाहिये।

इसका विशेषण आयन्, नक्षत्र, यह है। तात्पर्य यह है कि आविशिष्ट जो 'य, यह 'य, य शब्दसे आचार क्विप् करके पुनः क्विप् और तुक् करने पर

तस्मिंस्तुक्। तेन य-इति स्वरूपं सिद्धम्। इदं वर्णद्वयं द्वितीयेन रामि-त्यनेन सह पठितंचेत् रामाय-इति चतुर्थ्यन्तं नाम भवति। नक्षत्रपदे-नमुख्यत्वाच्चन्द्रस्तेनास्य कारणम्-'हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः' इतिश्रु-ति प्रसिद्धं हृदयं गृह्यते। यथा-ता अन्नमसृजंत इत्यन्नशब्देन पृथिवी त-द्वत् तेनागमप्रसिद्धो हृदयशब्दार्थो नमः शब्द उद्धृतो भवति। एषां सर्वेषां संकलनेन—रांरामाय नमः—इति उद्धृतो वेदितव्यः। एतत्फ-लमाह यतो नकिर ड्ढानुवेदेति। यत-इति तस्य यतमानस्य यतेः नकिः-नकिरति इतस्ततो विक्षिप्यत इति नकिः अविक्षिप्तं मनः अद्धा सा-क्षात् नु निश्चितं वेद जानाति एनं मंत्रं जपन्नेतदर्थं मनसा साक्षात् करोतीत्यर्थः 'मनसैवदेमासव्यमिति श्रुतेः। अस्यामृचि स्पष्टमेव श्री-राममनोरभिधानमुपलभ्यते। नीलकंठाचार्येण यथेयं व्याख्यातातथैव मयात्र समदर्शि। एवञ्च, ऋक्संहिताभागेप्यस्य श्रीराममंत्रस्योपल-

---

निष्पन्न होता है। इसके आगे द्वितीयबार पठित राम जोड़देने पर चतुर्थ्यन्त 'रामाय' पद निकलआया। तदनंतर नक्षत्र पदसे नक्षत्रोंमे मुख्य चन्द्र लिया गया। इसका कारण मन और मनका कारण हृदय है। अतः नक्षत्र पदसे हृदय पदार्थ लियागया। जैसे अन्यत्र वेदमें 'ता अन्नमसृन्त' इस स्थलमें अन्नपद पृथिवीका बोधक है। इसी प्रकार यहांभी जानलेना चाहिये। फलित यह हुआ कि हृदय पदार्थ आगम शास्त्रमें 'नमः' माना गया है। इन सब पदोंका सम्मेलन करदेनेसे 'रां रामाय नमः' यह मंत्र निष्पन्न होता है। इसका फल इस वाक्यसे कहा जाता है। 'यतो नकिरद्धानु वेद"-अर्थात् यत्नशील पुरुषकी स्थिर बुद्धि नि-श्चय रूपसे इसको जानसकती है। तात्पर्य यह है कि इस पूर्वप्रतिपादित मंत्रका जप करते हुए इसके अर्थका अनुसन्धान करनेसे पदार्थ स्वरूपका मनसे साक्षात्कार होता है। क्योंकि 'मनसेही इस परमतत्वकी प्राप्ति होती है, यह श्रुति है।

इस ऋचामें स्पष्टही श्रीराममंत्रका स्वरूप वर्णित है। श्रीनीलकंठाचार्यने जिस प्रकार इस ऋचाका व्याख्यान किया है इसी प्रकार मैंने यहां प्रदर्शित किया है। इस प्रकार संहिता भागमेंभी श्रीराममंत्रकी उपलब्धि खूब स्पष्टतया

द्धिः साक्षादुपपन्नैवेत्युपनिषद्भागे संहिता भागे चोपासासिद्ध्यर्थमस्य श्रीराममन्त्रस्योच्चार्यमाणत्वमक्षतम् ।८।

नवमकल्पस्यार्थस्तु वेदपदेनोपनिषत्प्रभृतिब्राह्मणग्रन्थस्य मंत्र-संहितायाश्चग्रहणम् तत्सम्बन्धित्वमस्यमनोः स्पष्टतरमेव । यतः कर्मोपासनाज्ञानकाण्डत्रयविभक्तेनवेदराशिना स्वार्थानुष्ठानवतः परमपुरुषार्थावाप्तिरेव चरमफलमुपदिश्यते । प्राक्कर्मणामुपदेशस्तस्यतात्पर्यं त्विदमेवयत् वेदाधिकृतः कामुको विविधानि विहितानि कर्माण्यनुतिष्ठन् तत्फलमाद्यन्तवदुपलभ्य ततोविरज्योपासनापरपर्यायरूपायांभगवद्भक्तावधिकृतो भवति ततोऽप्यनन्य तासिद्ध्यर्थं प्रयतमानो ज्ञानपदाभिहित भगवत्प्रपत्ति गर्भां परभक्तिमुपादत्ते । एवञ्चोत्तरोत्तराभ्यर्हिततमसाधनेधिकारिणमधिष्ठापयन्वेदोऽखिलजननिकायमुपक-

---

है। अतः उपनिषद् भाग (ब्राह्मण भाग)में और मंत्र भाग (संहिता)में उपासनाकी सिद्धके लिये इस श्रीराम मंत्रका उच्चारण, तथा वर्णन निर्विवाद सिद्ध हुआ ॥ ८॥

अब नवमकल्पका अर्थव्यक्त किया जाता है। वेद पदसे उपनिषद् आदि जो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनका और मंत्र संहिताकाग्रहण होता है। इन दो भागोंका सम्बन्ध इस राम मंत्रसे स्पष्टही है। क्योंकि कर्म उपासना और ज्ञान यह जो काण्डत्रयात्मक वेद है इससे परम पुरुषार्थ (मोक्ष)की प्राप्तिही वेदार्थके आचरण करने वालेके लिये अन्तिमफल है यह कहा जाता है। वेदमें प्रथम कर्मोंका उपदेश है इसका तात्पर्य यही है कि 'वेदाधिकारी भिन्नफलोंकी कामना वाला अनेक प्रकारके विहित कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ वैदिक कर्मोंके फलको सादि और सान्त (अर्थात् उत्पत्ति और नाश वाला) जानकर उनसे विरक्त होकर उपासनारूप भगवद्भक्तिमें अधिकृत होता है। इस भक्तिमेभी उत्कृष्ट अनन्यता सिद्धि के लिये प्रयत्नशील विवेकी पुरुष ज्ञान पदसे कही गयी जिसके अन्तर कुक्षिमें भगवत्प्रपत्ति आजाति है। ऐसी परभक्तिको ग्रहण करता है। इस प्रकार वेद भगवान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ साधनोंमें तत् तत

रोति। तत्रोपासनपरभक्त्योः प्रधानं साधनमिष्टदेवमंत्रमंत्रार्थानुस-न्धानमेवेति मंत्रस्यापि सादरं वेदेनसमर्थितत्वमित्यस्त्येव वेदपदाभि-धेयार्थसम्बन्धित्वरूपंनवमं वैदिकत्वमस्येति ॥९॥

अथ दशमकल्पलक्षितं वेदोच्चरितानुपूर्वीकस्वरूपंवैदिकत्वं प-र्यालोच्यते। वेदपदाभिधेययोःसंहितापदाभिधित्सितमंत्रभागब्राह्म-णभागयोर्दृष्टानुपूर्वीकत्वमेवतस्यार्थः। तत्रयद्यपिप्रातिस्विकतयोभय-त्रापि श्रीराममंत्रस्य वर्णनमस्तीत्येतदस्माभिः पूर्वोदितकल्पविवेच-नायां सम्यक् प्रत्यपादि। षष्ठकल्पे ब्राह्मणभागीयोपनिषत्सु तथाष्ट-मकल्पे मंत्रसंहितायाश्चानुपूर्व्यवच्छिन्न एवायं मंत्रराजः समदर्शि। नचोपनिषत्सु तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकम्" "स्वप्रकाशः परंज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः। तदेव रामचंद्रस्य मनोराद्यक्षरस्मृतः। अखण्डै-करसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः। रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दचिदा-त्मकः। नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम्। सदानमन्ति हृदये स-

अधिकारीको प्रोत्साहित करते हुए प्राणीमात्रका उपकार करते हैं। इन तीनों साधनोंमें उपासना और परभक्तिका प्रधान साधन उत्पादक) इष्टदेव मंत्र और उसके अर्थका अनुसन्धानही है। इस लिये मंत्रोकाभी आदरपूर्वक वेद प्रतिपादन करता है। इस लिये वेद पदाभिधेय आदि नवम वैदिकत्व कल्पभी इस श्री राममंत्रमें भली प्रकारसे संगत होता है॥ ९॥

अब दशम कल्पसे लक्षित वेदोच्चारित० आदि वैदिकत्वका पर्यालोचन किया जाता है। इस कल्पका अर्थ यह है कि वेदपदसे कहे जानेवाले मंत्र-संहिता और ब्राह्मण भागमें देखी गयी आनुपूर्वीवाला जो हो वह वैदिक कहा जा सकता है। इन दोनों प्रकारोंमें एक एक करके मंत्र और ब्राह्मण भाग इन दोनोंमें श्रीराममंत्र विद्यमान है यह हमने सिद्ध कर दिया है। छठे कल्पमें ब्राह्मण भाग उपनिषदोंमें और अष्टम कल्पममें मंत्रसंहितामें हमने ठीक आनु-पूर्वी विशिष्टही यह मंत्रराज दिखाया है। यहां यह शंका की जा सकती है

वैदेषासुमुक्षवइतीत्यादौ " एवं सचंत यदुषसः सूर्येण चित्रामस्येत्यादिमंत्रभागेच न श्रृंगग्राहिकयास्यमनोरानुपूर्वी समालक्ष्यते। किन्तु क्लिष्टकल्पनयातथानुपूर्वी साम्प्रदायिकैरुपपाद्यते नतुशुद्धेतिवाच्यम्। मन्त्राणामीप्सितफलसाधकत्वेनाति गोपनीयत्वात्तथैव वेदादिसच्छास्त्र प्रवर्तकाचार्याणां समयस्तन्निरूपणेव्यवहृतोभवति। अत एव 'रामो ऽन्तो वह्निपूर्वो इत्यादि पौराणिकवचसां सङ्गतिः। दृश्यते पंचरात्रतंत्रशास्त्रेष्वेवं प्रकारेणैव गोपनीयार्थानामभिधानम्। एतेनसाधारणजनवेद्यत्वाभाव एव साधितो भवति। अयंभावः। यथा वेदार्थो दुरधिगमस्तथामंत्रशास्त्रमपिदुर्ज्ञेयम्। अप्रसादितगुरुचरणास्त्वेनंमंत्रशास्त्रंलेशतोऽपिन ज्ञातुंशक्नुवन्ति। ज्ञातुंजातुप्रयतमाना अप्यनधिग-

---

कि उपनिषदोंमें "तारकं दीर्घानलं" इत्यादि वाक्योंमें और "सचंतयदुषसः" इत्यादि मंत्र भागमें मंत्र दिखाया गया। पर वह ठीक शृंगग्राहिकारूपसे सीधी आनुपूर्वीयुक्त नहीं बताया गया। किन्तु क्लिष्ट करके किसी प्रकार साम्प्रदायिक लोगोंने मंत्र सिद्ध किया है। शुद्ध आनुपूर्वीयुक्त नहीं बताया गया। इस शंकाका समाधान किया गया है। मंत्रोंको हमारे सिद्धान्तमें इष्ट फलके देनेवाले कहा गया है। अत एव वह अत्यन्त गुप्त रखे जाते हैं। जिससे सर्व साधारण इस विषयको न समझ सके। इसी आसयको लेकर 'रामोऽन्तो वह्निपूर्व' इत्यादि पुराण वचनोंकी सगति होती है। पंचरात्र शास्त्रमें एवं अन्यतंत्र शास्त्रमें इसी प्रकार गोपनीय अर्थोंके कथन किये जानेकी प्रथा है कि जिस प्रकार वेदार्थ दुरधिम है इसी प्रकार मंत्र शास्त्रभी अति दुर्ज्ञेय है। जिन्होंने गुरुचरणोंकी सेवा नहींकी ऐसे मनुष्य तो इस मंत्रशास्त्रको लेश मात्रभी नहीं जान सकते। कदाचित् जाननेके लिये प्रयत्नभी करते हैं परन्तु साम्प्रदायिक आचारके न जाननेके कारण पदपदमें संशयको प्राप्त होकर उलटे अर्थकोही ग्रहण कर बैठते हैं। इस लिये सम्प्रदायाचारमें प्रवीण श्री आचार्य (अपने गुरु) के चरणोंकी सेवापरायण होकर मंत्रशास्त्र जिज्ञासु जनको यथाविधि मंत्रशास्त्रका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसेही अज्ञाधन शिष्यमंत्र और

तसाम्प्रदायिकाचारतया पदे संशयाना बिपरीतमेवार्थमुपाददते। तस्मात्सम्प्रदायाचारचणाचार्यचरणपरिचर्यापरायणेन मंत्रतत्वजिज्ञासुना सविधि मंत्ररहस्यमभ्यसनीयम्। तथा सत्येव श्रद्धा धनेन विनेयेन मंत्रमंत्रार्थस्तदनुष्ठानप्रकारश्चसम्यक्शक्यतेऽवगन्तुम्।

तथाप्यानुपूर्वीविशिष्टमेवेमं मंत्रराजमस्मिन्कल्पकलि तमाम्नाये प्रदर्शयामः। मंत्रब्राह्मणयोराम्नायत्वमित्यनुपदंनिरणायि। तत्राथर्व वेदे महानारायणोपनिषदि महायंत्रस्वरूपविवेचनावसरे शिष्येण तद्यंत्रस्वरूपेपृष्टे देशिकस्योत्तरम्। "आदौ षट्कोणचक्रम्" इत्यारभ्य 'तद्दलकपोलेषु रामकृष्ण षडक्षरमन्त्रौ "रां रामाय नमः' क्लीं कृष्णायनमः" षट् कोणेषु सुदर्शन षडक्षरमंत्र इत्यादिकं स्वरवेणैवोच्चारितम्। अत्रच हस्तामलकवद्दरिदृश्यमानः विशुद्धानुपूर्वीविशिष्टएव श्रीराममंत्रनिभाल्यतइति विदांकुर्वन्तु पक्षपातविरहिणोविद्वांसः।

मंत्रके अर्थको तथा उसके अनुष्ठानको भली प्रकारसे जान सकता है। तौभी इस दशम कल्पमें 'ठीक आनुपूर्वी बिशिष्टही श्रीराममंत्रका वेदमें ठीक उल्लेख है' यह प्रदर्शित करते हैं। मंत्र (संहिता) और ब्राह्मण यह दोनें वेद हैं, यह अभी निर्णय किया गया है। इनमेंसे अथर्ववेदमें महानारायणोपनिषदमें महा यंत्रके स्वरूप विवेचन समय शिष्यके इस यंत्रके स्वरूपको पूछनेपर गुरुका उत्तर इस प्रकार है। प्रथम षट्कोण चाहिये इत्यादि विवेचनका आरंभ करके आगे लिखे हैकि इस मंत्रराजके भीतर कमलदल बनाकर उसके कपोल भागमें श्रीरामषडक्षर और श्रीकृष्णषडक्षर मंत्रोको लिखना चाहिये। आनुपूर्वीयुक्त स्वयं वेदभगवान् निर्देश करते हैंकि 'रां रामाय नमः' 'क्लीं कृष्णाय नमः' इस प्रकार इन दोनें मंत्रोको लिखे। और छ कोनोंपर सुदर्शन षडक्षर मंत्र लिखना चाहिये। इत्यादि स्वयं वेदमें पठित है। इस स्थलमें हाथमें आंवले जैसे देखे जाते हैं इसी प्रकार परम बिशुद्ध आनुपूर्वीयुक्तही श्रीराममंत्र देखा जाता है इस बातको पक्षपातरहित विद्वान् स्वयं जान सकते हैं।

एवमस्मत्साम्प्रदायिकमहाचार्यैः पंचसंस्कारपरिगणनावसरे चतुर्थमंत्रसंस्कारे श्रीरामपद्धतावपिविशिष्टतयाऽभ्यधायि । तत्राप्याथर्णिकश्रुतौ श्रीरामतापनीयोपनिषदि " ॐ रां रामाय नमः " इत्ययं महामंत्र स्वकंठरवेणैवोक्तः । एवं सर्व प्रकारेणास्य मंत्रराजस्य वैदिकत्वं सिद्धम् । मंत्रसंहिता भागेऽपि श्रीरामंत्रस्योपलब्धिः स्पष्टैव । एवं कृतेऽपिविस्तृतविवेचने केषांचिद्धृदयतः शंकापंको नापैतिचेत्तएवनास्तिकशिरोमणयस्साम्प्रदायिकैरभाष्याः । अनेन मंत्रसंहिताया एव वेदत्वमपरस्य ब्राह्मणभागस्य चर्षिप्रणीतत्वमितिमन्वानैः सुधारकददमलंकुर्वद्भिस्सामाजिकैरपिसंतोष्टव्यम् । तदभिमतेमंत्रभागरूपेवेदेऽपि श्रीराममनोर्दर्शितत्वात् । ननु 'सचन्तेत्यादि मंत्रोऽन्यः

इसी प्रकार हमारे सम्प्रदायके महाचार्योंने पंचसंस्कारके परिगणन अवसरमें चतुर्थ मंत्रसंस्कारमें श्रीरामपद्धति नामक ग्रंथमें विशेषरूपमें आथर्वणिकश्रुतिका उल्लेख किया है। श्रीरामतापनी श्रुतिमें 'ॐ रां रामाय नमः' इस प्रकार यह श्री राममंत्र निजकंठरवसेही कहा है। अब वह खिल इस समय उपलब्ध हो या न हो। क्योंकि अनेक श्रुतियां ऐसी हैं जिनको सम्प्रदायाचार्योंने अपने ग्रंथोमें लिखा है परन्तु वेदोमें उनका श्रवण नहीं होता तोभी उन श्रुतियोंको सब कोई मानते हैं। इस रीतिसे इस श्रीराममंत्रकी उपलब्धी स्पष्टही है। हमारे इस प्रकार विस्तृत विवेचन करने परभी किसीके हृदयसे शंकारूप कीचड़ न जाताहो तो यह नाहितक शिरोमणि हैं और साम्प्रदायिक जनोंके भाषण करने योग्य नहीं हैं। इस वैदिकत्वके समर्थनसे जो लोग मंत्रसंहिताकोही वेद मानते हैं और ब्राह्मण भागको ऋषियोंका बनाया हुआ मानते हैं ऐसे सुधार कंमन्य सामाजिक भाइयोंकोभी संतुष्ट होजाना चाहिये। क्योंकि उनका अभिमत वेद जो मंत्र भाग है 'इस भागमेंभी श्रीराममंत्र है, यह प्रस्फुट किया गया है। कोइ यह शंका कर बैठे कि 'सचन्त' इत्यादि मंत्रका सामाजिक लोग दूसरे प्रकारसेही अर्थ करते हैं सामाजिकोंके व्याख्यानसे इससे राममंत्रकी सिद्धि नहीं होती ? अतः इसका समाधान किया जाता है। सामाजिकभाईको ऐसा नहीं कहना चाहिये।

सामाजिकैः प्रकारान्तरेणैव व्याख्यायते। तदीयव्याख्ययांचन राम-मंत्रोव्युत्पाद्यत इति कुतस्तत्सिद्धिरितिचेन्मैवं वोचः। नह्येवं राजाज्ञा-स्ति यत्सामाजिकादिभिर्योऽर्थो वैदिकवाक्यानामवधृतः सएव सर्वैः स्वीकार्य इति। यथा तैर्निरुक्तकल्पशिक्षादिसाहाय्येनार्थोङ्गीकृतस्त-थास्माभिरपि तत्साहाय्येनैवविशुद्धार्थोंगीकृतः। अतो न कश्चिद्वि-शेषोऽन्यत्राभिनिवेशादितिसुधियो विभावयन्तु ॥

अथैवं श्रीराममंत्रस्य वैदिकत्वे सिद्धे तत्प्रसंगादत्रकेषामधिका-रइत्यपिनिर्णीयते। तथा हि "तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् स-मित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" इत्याद्यनेकश्रुतिप्रमाणेन भगवत्त-त्वावगमरूप ब्रह्मविद्याया इष्टमंत्रजपादिष्वपि पर्यवसन्नत्त्वात्तेषाञ्च गुरूपदेशपूर्वकत्वविधानाच्छास्त्रोक्त लक्षणेनाचार्येण "तस्मै सविद्वानु-

---

अ० प्र० टी०। ऐसी कोई राजाज्ञा नही है कि सामाजिक आदिने वैदिक वाक्योंकाजो अर्थ निश्चित किया है वही सब विद्वानोंकोभी स्वीकार करलेना चाहिये। जैसे उन्होंने निरुक्त कल्पशिक्षादिकी सहायता लेकर अर्थका निश्चय किया है वैसे हमनेभी निरुक्तादिके साहाय्यसेही इस अर्थका स्वीकार किया है। इस लिये केवल अभि निवेशके शिवाय अन्य कोई विशेष नहीं है। इसका वि-द्वान् महानुभाव स्वयं विचार करेंगे। इस प्रकार यह दश कल्पसे विभक्त करके 'श्रीराममंत्रको वैदिकत्व है, यह सिद्ध किया गया।

अब इस प्रकार श्रीराममंत्रकी वैदिकता सिद्ध होजानेपर इस प्रसंगसे इस मंत्रके ग्रहणमें किसका कैसा अधिकार है यहभी निर्णय किया जाता है। इसका विचार इस प्रकार है "तद्विज्ञानार्थं" इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणसे भगवत्स्वरूपका पूर्ण परिज्ञान करना एतद्रूप जो ब्रह्म विद्या है इस विद्याके अन्तर्भूत इष्ट मंत्रका जप आदि, भगवत्प्रसत्तिजनक स-मस्त कर्मोंका समावेश होजाता है। और मंत्रका ग्रहण यथाविधि गुरुसेही करना चाहिये। गुरुकोभी शास्त्रमें जैसे लक्षण वर्णित हैं वैसेही होना आव-श्यक है। एवं शिष्यके लक्षण 'तस्मैस विद्वान्" इस श्रुतिमें कथित है, उसे

पसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय" इत्यादिलक्षणलक्षि-ताय शिष्याय यथाधिकारं मंत्रोदेयः। एतदेवान्यत्र निरूपितम्। विष्णु यामलतंत्रे—

दिव्यंज्ञानं यतोदद्यात्कुर्यात्पापस्यसंक्षयम्।
तस्माद्दीक्षेतिसाप्रोक्तादेशिकैस्तंत्र कोविदैः॥
अतोगुरुंप्रणम्यैव सर्वस्वं विनिवेद्यच।
गृह्णीयाद्वैष्णवंमंत्र दीक्षापूर्वं विधानतः॥
दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः।
दीक्षामाश्रित्यनिवसेद्यत्रकुत्राश्रमेनरः॥
अदीक्षितायेकुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
नभवन्ति प्रियं तेषां शिलायामुप्तबीजवद्यदि॥

एवं वैष्णवदीक्षायाश्चतुर्भिवर्णैरवश्यगृहीतव्यतया स्वाधिका-

उपसन्न, अच्छीतरह प्रशान्तचित्त, और पूर्ण मुमुक्षु होना चाहिये। इन लक्षणोंसे युक्त शिष्यको उसके अधिकारके अनुसारही मंत्रोपदेश करना चाहिये। यही बात अन्य ग्रंथोंमें निरूपणकी गयी है। विष्णुयामलतंत्रमें लिखा है कि-

दीक्षा-इस शब्दमें प्रथमाक्षर 'दी' है इसका अर्थ है दिव्यज्ञानदायिनी और द्वितीयाक्षर 'क्ष' अर्थ है पापोंको क्षय करने वाली अर्थात् दिव्य ज्ञानको देकर पापोंको क्षय करनेवाली है अत एव सर्व-आचार्योंने दीक्षा नामसे इसकी प्रसिद्धि की है।

इसलिये गुरुको प्रणाम करके और सर्वस्व निवेदन करके विधि पूर्वक दीक्षा लेते हुए वैष्णव मंत्रको ग्रहण करना चाहिये। जप और तप सब दीक्षा मूल है इस लिये धर्मा धिकारी मनुष्यको दीक्षाका आश्रय लेकरही जिस किसी आश्रममें रहना चाहिये। जो अदीक्षित हैं, और वह जप पूजादि कर्म करता है उसका वह कर्म सिद्धिप्रद नहीं होता जैसे शिलातलमें बीज बोया हुआ जमता नहीं वैसेही जानलेना चाहिये।

रानुगुण एव वैदिकस्तदितरोवा मंत्रोग्राह्यः अत एव विष्णुयामले-ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् सच्छुद्रान् सत्स्त्रियोऽपिवा। विष्णुभक्तिरतान् साधून् दीक्षयेद्विधिना गुरुरिति स्पष्टमभिहितम्। अत्रत्रैवर्णिकानन्तरं सच्छूद्रानिति कथनेन असच्छूद्राणां (अस्पृश्यशूद्राणां) दीक्षानिषेधोऽर्थादापद्यते। हारीतशास्त्रे-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः। मंत्राधिकारिणः सर्वेह्यनन्यशरणायदि। अत्र शूद्रपदं स्पृश्यशूद्रपरमितरपदञ्च स्पृश्यानुलोमप्रतिलोमवर्णपरमनेकसाम्प्रदायिक प्रमाणानुरोधादिति विज्ञेयम्। तत्रापि त्रैवर्णिकानां सविधि वैदिकस्यैव श्रीराममनोरुपदेशस्तदितरजातीयानांचतांत्रिकस्यैवेति विवेकः। तथाचोक्तं तंत्रशास्त्रे वैदिकास्तांत्रिका श्चैव द्वये मुख्या द्विजन्मनाम्। शूद्रानुलोमजातीनां मंत्रा स्स्युस्तांत्रिकाः परम्। अत एव-

---

इस प्रकार वैष्णवदीक्षा चारो वर्णोंको अवश्य ग्रहण करना चाहिये। इस दीक्षामें अपने वर्णके अनुसारही द्विजातिको वैदिक और चतुर्थवर्णको तांत्रिक मंत्रलेना चाहिये। इस लिये विष्णुयामल तंत्रमें लिखा है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सच्छूद्र (जिनशूद्रोंका जल ग्रहण किया जासकता है) औरे सत्स्त्रियाँ यदि विष्णुभक्त परायण होंतो उनको गुरु सविधि दीक्षा देवै। इस उपर्युक्त बचनमें प्रथम तीन वर्णोंको दीक्षाका बिधान किया। पश्चात् सत् शूद्रकोभी तद्वर्णोचितदीक्षा देना लिखा। सच्छूद्र पदसे कथन है अतः असत् शूद्रों (अस्पृश्य, असंभाव्य शूद्रों)का निषेध सिद्ध होता है। इस प्रकार हारीत धर्म शास्त्रकाभी प्रमाण संग्रह किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णोंकाभी मंत्रमें अधिकार है। वह यदि अनन्य शरण होंतो। इस वाक्यमें शूद्र पद स्पृश्य शूद्रका बोधकहै और इतर पद स्पृश्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णोका बोधक जानना चाहिये। यह अर्थ अनेक साम्प्रदायिक प्रमाणोंके अनुरोधसे सिद्ध होता है। उपर्युक्त इन समस्त अधिकारियोंमेंभी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको वैदिक मंत्रका और इन तीनवर्णोंसे अतिरिक्त समस्त वर्णोंको तांत्रिक मंत्रकाही उपदेश देना चाहिये यह विवेक है। इसी प्रकार तंत्र शास्त्रोंमें व्यवस्था देखी जाती है। द्विजवर्णको वैदिक और

चपञ्चरात्रेशास्त्रे 'नस्वरः प्रणवोंगानि नाप्यन्यविधयस्तथा। स्त्रीणाञ्च शूद्रजातीनां मंत्रमात्रोक्तिरिष्यते' इत्यादिवचनान्युपद्यन्ते। अयमभिप्रायः। द्विजस्त्रीसच्छूद्रानुलोमादिजातीनामुपदेश्यत्वेऽपि तेषामधिकारानुगुण एव मंत्रोदेयः द्विजातेस्तु प्रणवस्थानीयवीजविशिष्ट एवोपदेश्यः। तद्भिन्नस्त्रीसच्छूद्रानुलोमजातिभ्यः प्रणवस्थानीयबीजवर्णविरहित एव प्रदेयः। नच बीजवर्णरहितस्य क्षतषडक्षरतया न फलविशेषाधायकत्वमिति वाच्यम्। बीजवर्ण रहितत्वेऽपि तदनुगुणवर्णान्तरयोजनेन फलविशेषाधायिनी सुरक्षितैवषडक्षरतेति गृहाण। यथोक्तमष्टाक्षरमंत्रविद्भिराचार्यैः-तत्रोत्तरायणस्यादिर्विन्दुमान् विष्णुरन्ततः। बीजमष्टाक्षरस्यस्यात् तेनाष्टाक्षरता भवेत्। एवं प्रकृतमंत्रेऽपि, बीजवर्णस्थानाभिषिक्तेनषट्त्वसंख्यापूरकेण बीजार्थप्रतिपादकेन घटितस्यतदुचितार्थप्रतिपादकत्वमव्याहतमिति। कतमः सवर्णो बीजार्थमभिधत्ते तत्स्थानश्रियश्चलभत इतिजिज्ञासाचेद्रहस्यविदोदेशिकवर्या एव समाश्रयणीयाइति सर्वमवदातम्।

तांत्रिक दोनों प्रकारके मंत्रोंका अधिकार है। और शूद्र, तथा अनुलोमादि जातिवालोंको तांत्रिक मंत्रोका अधिकार है। इस लिये पंचरात्रशास्त्रके इसवचनकीभी उपपत्ति होती है कि, स्त्री, शूद्र, आदिवर्णोंको स्वर, प्रणव अंग और अन्य विधिको छोड़कर केवल मंत्र प्रदान करना चाहिये।

अभिप्राय यह है कि-द्विजवर्ण स्त्री शूद्र और अनुलोमादिवर्ण इन सबको मंत्रोपदेशदेना चाहिये, पर उनके अधिकारके अनुसारही। द्विजवर्णको प्रणवस्थानीय बीजवर्णविशिष्टही उपदेश देना आवश्यक है। द्विजेतर स्त्री, शूद्र, अनुलोम, अद्विजातियोंको प्रणवस्थानीय बीजवर्ण रहितही उपदेश देना चाहिये। बीजरहित श्रीराममंत्रको पूर्ण षड़क्षर न होनेके कारण विशिष्ट फलदायकता नहोगी यह नहीं मानना चाहिये। बीजवर्ण रहित होनेपरभी बीजवर्णकी योग्यतावाले दूसरे वर्णको उसकी जगह स्थापित करदेनेसे विशिष्टफलको देनेवाली षड़क्षरता पूर्ण सुरक्षित रहती है यही उत्तर समझ लेना चाहिये।

ननु "न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताःस्मृताःसर्व वर्णेषु तेशूद्रा-येह्यभक्ता जनार्दने" इति महाभारतवचनाद् धनुर्बाणाद्यायुधचिह्नि-तानां श्रीवैष्णवानां शूद्रत्वमेव नास्ति चाण्डालादीनामत्यन्तनिकृष्टा-नां दर्शनस्पर्शनसम्भाषणानर्हाणान्तूपदेश्यत्वमेव नास्तीतिकुतो मंत्र-भेद इति चेन्न, श्रुतिस्मृतिसदाचारविरोधात्। तथाहि-उत्तरमीमां-सायां तद्भाष्येच शूद्रस्याप्यर्थित्वं सामर्थ्यश्चविद्यत इति ब्रह्मविद्या-यामधिकारःस्यादितिपूर्वपक्षयित्वा, असामर्थ्याच्छूद्रस्य ब्रह्मविद्यायां

इसी बातको अष्टाक्षर मंत्रके ज्ञाता आचार्योंने कहा है। 'तत्रोत्तरायण" इत्यादिवाक्यसे। इसी प्रकार प्रकृत मंत्रमेंभी बीजवर्णके स्थान पर स्थापितछः की संख्याको पूर्ण करनेवाले एवं बीजकेही अर्थको प्रतिपादन करनेवाले वर्णसे युक्त यहमंत्रभी योग्यफलको देनेवाला निर्विबाद सिद्ध हुआ। वह कौनवर्ण है जो बीजके अर्थको कहता हुआ उसक स्थानपर स्थापित किया जाता है यह जिज्ञासा यदि किसीको होतो साम्प्रदायिक रहस्यको यथार्थरूपसे जाननेवाले आचार्योंकीही शरण लेनी चाहिये। इस प्रकार यह सब शंकाओंसे रहित है।

अब यहां यह आशंका होती है कि, महाभारतमें लिखा है कि "भगवान के भक्त शूद्र नहीं होते किन्तु वह भागवत विप्रही कहे जाते हैं। किन्तु सब वर्णोंमे वही शूद्र हैं जो भगवानके भक्त नही हैं। इत्यादि वचनोंसे धनु-र्बाणादि आयुधोंसे बाहुमूलमें चिह्नित ऐसे श्रीवैष्णव शूद्रही नहीं कहे जाते। और चाण्डाल आदिजो अत्यन्त निकृष्ट वर्ण हैं जो देखनेके छूनेके और भाषण करनेके अयोग्य हैं ऐसे अन्त्यजोंको इस मंत्रकी उपदेश्यताही नहीं होसकती। तब मंत्रमें भेदकिसलिये करना चाहिये।

इस शंकाका समाधान इस प्रकार है कि ऐसा करनेसे श्रुति स्मृति और सदाचारमें विरोध आता है। इसका समर्थन इस प्रकार है। उत्तरमीमां-सा शास्त्र और उसके आनन्द भाष्यमें यह शंका उठायी गयी कि "शूद्रकाभी अर्थित्व और सामर्थ्य धारण करनेके कारण ब्रह्मविद्यामें अधिकार होना चा-हिये। इस पूर्व पक्षका उत्तर सूत्रकार और भाष्यकार इन दोनोंने यह दिया कि, सामर्थ्य न होनेके कारण शूद्रका ब्रह्मविद्यामें अधिकार नहीं है। जिसको उप-

नाधिकार इति तन्निराचक्रुः सूत्रभाष्यकृतः। नोपनयनवेदानुवचनयज्ञादिष्वनधिकृतस्य तस्य ब्रह्मोपासनसामर्थ्यं सम्भवति। अध्ययनविधिसिद्धस्वाध्यायाध्ययनाधिगतज्ञानस्यैव ब्रह्मोपासनोपायत्वादसामर्थ्यमेवेति। तथाच श्रुतिस्मृतयः। "यद्युहवा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्,, "तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीयः,, "न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति"। एवमग्न्याधानप्रकरणेऽपि "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्य" इति त्रैवर्णिकानामेवाग्न्याधानं श्रूयते नतुशूद्रस्यापि। विदुर धर्मव्याधादीनान्तु पूर्वजन्माभ्यस्तसमस्त विद्यत्वादिहजन्मनिप्राकृतनसंस्कारवशाज्ज्ञानवत्त्वमिति नकश्चिद्विरोधः। तस्मान्नब्रह्मविद्यायां शूद्रस्याधिकारः सम्भवति। तदभावेच परमवैदिके बीजववर्णविशिष्टषडक्षर श्रीराममनावपिनतेषामधिकारस्तस्यापि ब्रह्मविद्यात्वाविशेषादितिसिद्धम्॥

नयनसंस्कारवेदाध्ययन और यज्ञादिमें अधिकार नहो उसे ब्रह्मविद्यामेंभी सामर्थ्य नहीं माना जाता। क्योंकि "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस अध्ययनविधिसे प्राप्त जो वेद ज्ञान है वही वेदज्ञान ब्रह्मोपासनका उपाय है। और शूद्रको वेदाध्ययनका निषेध है अत एव उसे असामर्थ्य है। इस विषयमें श्रुति और स्मृतिके प्रमाण दिये जाते हैं। 'यद्युहवा' इत्यादि। भावार्थ यह है कि शूद्र श्मशानकी भांति सदा अपवित्र रहता है। इस लिये शूद्रके समीपमेंभी वेद नहीं पढना चाहिये। इस लिये शूद्र बहुत पशु रखनेवाला होता है और यज्ञका अनाधिकारी होता है। शूद्रके लिये पातकनहीं है और वह संस्कारके योग्य नहीं होता। इसी प्रकार अग्न्याधान प्रकरणमें श्रुतिसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंके लिये अग्न्याधान विधान किया गया। शूद्रके लियेनहीं।

विदुर और धर्मव्याधतो पूर्वजन्ममेंही पूर्णतया सर्वविद्याएें पढलियेथे। परन्तु किसी उग्रकर्मसे शूद्र शरीर प्राप्त होगया था। इस शरीरमेंभी पूर्वके प्रबल संस्कारोंसे सब स्मृति और जातिस्मर ज्ञान हुआ था। इससे वह पूर्णज्ञानवान थे। अतः कोई विरोध नहीं होता है। इस लिये शूद्रको ब्रह्मविद्यामें अधिकार असम्भव है। और इसमें अधिकार न होनेसे बीजवर्णसंयुक्त श्रीराममंत्रमेंभी अधिकार नहीं है। क्योंकि यहभी ब्रह्मविद्याही है। यह निर्विवाद सिद्ध हुआ।

एवं तर्हि 'नशूद्राभगवद्भक्तां विप्रा भागवताः स्मृता इत्यस्य कागतिरितिचेच्छृणु, नानेन वाक्येन शूद्रभगवद्भक्तेशूद्रत्वंनिषिध्य विप्रत्वं विधीयते। विधिपदाश्रवणात्, नच विधिपदाध्याहारः कर्तव्यः श्रूयमाणस्मृतपदार्थविरोधापत्तेः । नहि भागवता विप्राः स्मृताः ज्ञेयाश्चेति शक्यतेवक्तुम् वाक्यभेदापत्तेः। तस्मादस्य वाक्यस्यायमेवार्थः। भगवत्प्रसत्तिहेतुभूत तदनन्यभक्तिवशीकृतान्तः करणत्वा द्भगवतास्वीयत्वेन स्वीकृता विप्राः स्मृताः इत्यधिकारिविप्रगत्यर्हा इत्यर्थः। अस्मिन्नर्थे भगवद्वाक्यमेवप्रामाण्यम्भजते । मांहिपार्थव्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। अत्र भगवदाश्रिता नामपि स्त्रीवैश्यशूद्राणां पार्थक्येन निर्दिश्य परगतित्व बोधनात् पुरोदीरितार्थ एवतात्पर्यलाभात्। एवमेव "सर्ववर्णेषु ते शूद्रायेनभक्ता जनार्दने" इत्यादौ शूद्राः शूद्रगत्यर्हा एष एवा-

---

अब 'न शूद्रा भगवद्भक्ता' इसकीक्या दशा होगी यह शंका होतो सुनिये। इस वाक्यसे शूद्र भगवद्भक्तमें शूद्र त्वका निषेध करके विप्रत्वका विधान नहीं किया जाता। क्योंकि वहां विधिपदका श्रवण नहीं है। और विधिपदका अध्याहारभी नहीं होसकता। क्योंकिश्रूयमाणस्मृत पदार्थका विरोध होगा। भागवत कहे जाते हैं। और जानने चाहिये ऐसा अर्थ करनेसे वाक्यभेद होगा इसलिये इस वाक्यका यह अर्थ है कि, भगवानके अनुग्रहका कारण अनन्यभक्तिसे जिनका अंतः करणवशीकृत है ऐसे प्रभुने अपने करके स्वीकृत विप्र हैं। अर्थात् अधिकारी विप्रगतीके योग्य हैं।

इस अर्थमें श्रीभगवानका वाक्यही प्रमाण है। वह वाक्य यह है कि "हे अर्जुन! मेरे आश्रित जो स्त्री वैश्य और शूद्र आदी पापयोनियां हैं वहभी परगतिको प्राप्त होजाती हैं" इस भगद्वाक्यमें भगवदाश्रित ऐसे स्त्री शूद्रोंको पृथक् निर्देश करके पर गतिका बोध किया है। इससे पूर्वकथित अर्थकाही लाभ होता है। इसी प्रकार 'सर्ववर्णेषु' इत्यादिवाक्योंमें जहां जहां शूद्रादि-पद हैं उनका 'शूद्रादि गतिके योग्य हैं यही अर्थ स्वीकार करना चाहिये। इस

थीऽभ्युपेयः एवंचानेकप्रमाणव्याकोप प्रसंगोऽपि दूरोत्सारितो भवतीति सर्वं समञ्जसम्।

इतः परमति संक्षेपान्मंत्रार्थो निरूप्यते। रहस्यग्रन्थेषु जपकर्मीभूतस्यमंत्रस्यसार्थकस्यै वमननीयत्वेनफलविशेधायकत्वम् एवं स्थितेऽर्थसापेक्षत्वमायातम्। तत्र दिकानां मन्त्राणाश्चार्थो द्विविधोभवति। एकः साधारणः योह्याशुसमस्तजनप्रतिपत्तिगोचरतामुपगच्छति। अपरश्च साम्प्रदायिकरहस्यवेदिवेदनविषयः।तत्र चतुर्थ्यन्तपदेन नमसाच योर्थोऽवबुध्यते ससाधारणः। यश्चापरोर्थःसाम्प्रदायिकविज्ञानाञ्जनोद्रिक्तनयनैर्निर्णीतः सएवात्र प्रदर्श्यते। तथाहि प्रकृतेऽस्मिन् मन्त्रराजे प्रथमो रामिति बीजवर्णो विद्यते। अयश्च प्रणवकारणतया तत्त्वविद्भिरुपदिश्यते। एवमेव वैष्णवमताब्जभास्करे श्रीमदाचार्यपादैरभ्यधायि।"यावद्वेदार्थगर्भं प्रणवि जगदुदाधारभूतं सविन्दु सुव्यक्तं राम बीजमित्यादिना। अत्रचाचार्यपादै यावद्वेदार्थगर्भमित्यनेनतारकमंत्रराजाग्रवर्ति-

---

प्रकार अर्थ माननेसे अनेक प्रमाणोंका व्याकोप प्रसंगभी दूरोत्सारित होता है। अतः सब समंजस है।

अब इससे आगे अति संक्षेपसे मंत्रार्थका निरूपण किया जाता है। रहस्यग्रन्थोंमें जपनीय मंत्रको, अर्थ सहितही जपकरनेसे फल विशेष दातृता है। जब ऐसा है तब अर्थ सापेक्षता सिद्ध हुई वैदिक मंत्रोंका अर्थ दो प्रकारका हुआ करता है। एक-साधारण होता है जीसका सब मनुष्योंको शीघ्रतया ज्ञान होजाता है। दूसरे अर्थको केवल साम्प्रदायिक रहस्य जाननेवालेही जान सकते हैं। इन दोनोंमें चतुर्थ्यन्त पदसे और नमः पदसे जो अर्थ स्वरसतः निकलता है वह साधारण है। और जो दूसरा अर्थ साम्प्रदायिक विज्ञानरूप अंजनसे परिष्कृत नेत्रवाले पूर्वाचार्योंसे निर्णीत है वही यहां दिखाया जाता है। इस श्रीराममंत्रमें प्रथम 'रां, यह बीजवर्ण है। यह प्रणवका कारण है ऐसा तत्ववेत्ताओंने कहा है। और इसी प्रकार वैष्णवमताब्जभास्करमें श्रीमदाचार्य चरणोंनेभी कहा है। यावद्वेदार्थ इत्यादि वाक्यसे। इस वाक्यमें आचार्य चरणोंने 'यावद्वेदार्थगर्भम' इस पदसे तारक मंत्र राजके अग्रभागमें स्थित बीजवर्णको विशिष्ट किया है।

बीजवर्णो विशेषितः। अनेनचाखिलवेदार्थगर्भत्वं रामिति बीजवर्णस्यसिद्धम्। तच्चेत्थं गायत्र्याः समस्तवेदमयत्वात्तत्प्रतिपाद्यश्चसवित्रन्तर्वर्तिभर्गशब्दाभिहितपरमपुरुषपदवेद्यो भगवान् श्रीरामएवेत्यनेक प्रमाणैरवसीयते। सनत्कुमारसंहितादिषु–सूर्यमण्डलमध्यस्थंरामंसीता समन्वितम्। नमामिपुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम्, इत्यादिवाक्यैस्तथा दर्शनात्। एवञ्च स एवात्र रशब्देनाभिधीयते। तस्माद्युक्तमेवाखिलवेदार्थगर्भत्वमस्य।

अत एवोक्तमाचार्यैः—यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्चमहाद्रुमः। तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् इति। अत एवच स्मृतौ–सर्ववेदाश्रयत्वाच्च सर्वलोकस्य कारणात्। ईश्वरप्रतिपाद्यत्वादखण्डब्रह्मवाचकइति स्पष्टमभिहितम्। अत एवच "विश्वरूपस्यते राम विश्व शब्दाहि वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमक्षयम्। इति स्कान्दवचः संगच्छते।

अनेन सर्वेषां शब्दानां मूलकारणं रामशब्दएवेति सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेन साधितं भवति। अत एव चाचार्यपादैः प्रणवीत्युक्तम्। प्रणवश्चोंकारः स अस्मिन् विद्यत इति प्रणवि। अनेन प्रणवजनक-

---

इससे समस्त वेदोंका अर्थ इसके भीतर समाया हुआ है। यह सिद्ध होता है। वह इस प्रकारसे। गायत्रीको समस्त वेदरूप माना गया है और गायत्रीसे प्रतिपादित सूर्यके अंतरबर्ती भर्गशब्दसेकथित परमपुरुष भगवान श्रीरामचंद्रजीही हैं। यह अनेक प्रमाणोंसे निश्चित है। सूर्यमण्डलमें श्रीसीता महाराणीजीके साथ श्रीरामजी विराजमान हैं मैं उनको नमस्कार करताहूं : इत्यादि सनत्कुमार संहितामें लिखा है। अतः वही यहांपर रशब्दसे कहे जाते हैं। इसलिये अखिल वेदोंके अर्थका समूह इसमें युक्तही है। इसी लिये "यथैव, इत्यादिवाक्योंसे आचार्योंने कहा है। इस उपयुक्त विवेचनसे सबशब्दोंका मूलकारण राम शब्दही है यह सर्व शाखाप्रत्ययन्यायसे सिद्ध होता है। इसी लिये परमाचार्य चरणोंने इसे प्रणवी कहा है। अर्थात प्रणव [ओंकार]का यह

त्वंरामनाम्नःसिद्ध्यति । तथाचोक्तं महारामायणे "अंशांशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धाभवन्तिहि । बीजमोंकारः सोऽहंच सूत्रमुक्तमिति श्रुतिः। स्मृतावपि-प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजं श्रेष्ठं तथापरे । तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धमाप्नोति मे मतम्। अत एव केचिद् पृषोदरादित्वमङ्गीकृत्यवर्ण विपर्ययेण तारकषडक्षरमंत्रबीजतः प्रणवं साधयन्ति। तदपि युक्तमुपदर्शित प्रमाणपर्यालोचनेनेत्यलं रहस्यवित्सु ।

एवञ्चास्य श्रीराममनोरुपरिष्टाद्रहस्यविद्भिःषट्पदान्युदाहृतानि। तत्राद्यं पदंरामितिबीजघटकाद्यावयवभूतंरेतिलुप्तचतुर्थीकं पदम् । एतच्च पदं क्रीडादीप्त्यादानपालनाद्यर्थकैरम्रिराजिरातिरक्षीत्यादिभिर्निष्पद्यते । तद्वाच्यश्च सर्वकारणकारणः सर्वशक्तिविशिष्टो भगवान् श्रीरामचन्द्र एव। तेनचाखिलस्य जगतः समुत्पादनपालनलयकर्तृत्वं सर्वेश्वरे भगवति श्रीरामे स्पष्टमुट्टंकितं भवति। अव्युत्पन्नरशब्दस्याप्ययमेवार्थोऽभ्युपेयः श्रुतिसम्मतः। द्वितीयमेति प्रथमान्तं पदम्। तदर्थश्चा-

---

कारण है। यही महारामायणमेंभी कहा है कि 'रामनामकेभी अंशसे बीज, ओंकार और सोहं शब्द यह तीन सिद्ध होते हैं। स्मृतिमेंभी यही बात मिलती है "कितने प्रणवको श्रेष्ठमानते हैं और कितने बीजको परन्तु मेरा मत है कि वह श्रीरामनामके वर्णोंसेही सिद्ध होता है। इसी लिये विद्वान् लोग इस तारक षड़क्षर मंत्रके बीजवर्णसे पृषोदरा दिमानकर वर्णविपर्यय करके प्रणवकी सिद्धि मानते हैं। ऊपरकहे हुए प्रमाणोंके पर्यालोचनसे यहभी ठीक है। इस प्रकार इस श्रीराममंत्रके षट्पद रहस्यवेत्ताओंने कहे हैं। इनमें प्रथम पदबीजमें लुप्त चतुर्थीक 'र' यह पद है। यह पद, क्रीड़ा दीप्ति, आदान, और पालन आदि अर्थवाले रम् राज़ रा रक्ष् धातुओंसे औणादिकड़ प्रत्यय करनेपर तथा चतुर्थी विभक्तिका सुपांसुलुक्० इत्यादि सूत्रसे लोपकरनेपर सिद्धहोता है। इस पदका अर्थ सब कारणोंकेभी कारण सर्व शक्ति सम्पन्न भगवान् श्रीरामचंद्रजीही हैं। इससे सब जगत्के उत्पादन पालन और लयके कर्ता भगवान् श्रीरामजीही सिद्ध होते हैं। अव्युत्पन्न 'र' शब्दकाभी यही अर्थ श्रुति सम्मत है।

खिलजगद्योनिर्जगतामधीश्वरीश्रीरामाभिन्नस्वरूपरूपलीलानामधा-
माधिराज्ञी भगवती सीतैवोच्यते । रक्षणाद्यर्थकाऽवधातोर्न्निष्पन्न
स्याप्यस्य पदस्यायमेवार्थोऽवसेयः। सिद्धान्ते महाराज्याः श्रीजनकन-
न्दिन्याः पुरुषकारत्वेन स्वीकृततया शरणगताञ्जीवाननन्तदिव्यगुण-
धाम्न्यभिमुखीकृत्य साकेतधाम्नि नित्यलीलाविलासानुभवप्रदापयितृ-
तयारक्षकत्वं तस्यां श्रियः श्रियां स्पष्टमेव संगच्छते।एवमवधातोर्व्युत्पा-
दितस्यास्य सर्वेप्यर्थाः स्वकीयदेशिककृपाकटाक्षेण जिज्ञासुजनैरवगन्त-
व्याः।श्रीराममनोरेतद्वितीयपदार्थ पर्यालोचनं देवतान्तरशेषत्वनिवृत्ति-
पुरस्सरंभगवदनन्यार्हशेषत्वंदृढयति। नचाकारस्य श्रीपदबोध्यसीता
वाचकत्वं न सम्भवति नामनिरुक्तिव्याकृत्यादिषु तथाविधार्थस्यादृ-
ष्टत्वादितिवाच्यम् । 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभायथा। 'रका-
रेणोच्यते रामः श्रीरकारेणाच्यते । मकारस्तु तयोर्दासः॥ "रकारमका-
रयोर्मध्येऽकारेण सीतोच्यते" इत्यादि साम्प्रदायिकप्रमाणैस्तथार्थाव
धारणात् ।

मंत्रका दूसरा 'अ' यह प्रथमान्त पद है। इसका अर्थ समस्त जगत्की उत्पादनकर्त्री जगदीश्वरी श्रीरामजीसे अभिन्न स्वरूप रूपलीला नाम और धामकी अधिष्ठात्री भगवती सीताजी है। रक्षणाद्यर्थक अव् धातुसे व्युत्पादित 'अ' पदकाभी यही अर्थ है। सिद्धान्तमें महाराणी श्रीजनक नन्दिनीजीको पुरुषकार रूपसे माना गया है इस लिये शरणागतजीवोंको अनन्त दिव्यगुण धाम श्रीरामजीके सन्मुख करके दिव्य साकेत धाममें नित्यलीला विलासका अनुभव प्रदान करनेके कारण रक्षकत्व अम्बाजीमें स्पष्टहीं है। अव् धातुसे निष्पन्न इस शब्दके सब अर्थ स्वकीय आचार्यकी कृपा कटाक्षसे जान लेना चाहिये। कोई यह शंका करते हैं कि कोश व्याकरणके विरुद्ध होनेके कारण अकारको श्रीसीतावाचकत्व नहीं होसकता। इसका उत्तर 'अनन्या' इस वाल्मीकि मुनिके प्रयोगसे तथा 'श्रीरकारेणोच्यते' इस वचनसे एवं 'रकारमकारयो र्मध्ये' इस वचनसे श्रीसीतावाचकत्व उपपन्न होता है।

श्रीराममनोस्तृतीयं पदं हर्षाववोधनपरिणामज्ञानाद्यर्थकैर्मदि-मनिमसिमन्यादिभिर्निष्पद्यते। पारतन्त्र्यादिगुणविशिष्टजीववाच-कात्मन्छन्दस्यच्छान्दसत्वेन मकारातिरिक्तयोः पूर्वोत्तरभागयोर्लोपे-नापीदं सिद्ध्यति। एतत्पदवाच्यश्च ज्ञानानन्दगुणकोज्ञानाश्रयोऽजः करणकलेवरविलक्षणः पारिमाण्डल्यवद्भगवदनन्यार्हं शेषभूतो भगव-त्कैंकर्याधिकारी जीव एव। इत्थमनेन मंत्रराजबीजपदत्रयेण चिदचि-द्विशिष्टं श्रीरामाख्यम्परं ब्रह्मैवाभिधीयते। बीजघटकयोरमोः पदयो-र्मध्यगंद्वितीयंपदं स्वरूपतोर्थतश्चाद्यतृतीयपदतद्वाच्याभ्यांसह सम्बन्ध-मप्यमिधत्ते। मंत्रार्थानुसन्धानेतु मवाच्योऽहंजीवो नस्वतंत्रः किन्तु रावाच्ययोरखिललोकपरिवृढश्रीजनकनन्दिनी रघुनन्दनयोश्शेषभूतो-ऽनन्यार्ह इतिसमुदितेन बीजेनावगन्तव्यम्।

तुरीयंपदं रामायेति चतुर्थ्यन्तमेव। तेनाखिलचेतनाचेतनात्मक-

श्रीराममंत्रका तीसरा पद हर्ष, अवबोधन, परिणाम और ज्ञान आदि अर्थवाले मद् मन् मस् मन् आदि धातुओंसे निष्पन्न होता है। एवं परतंत्रत्वगुण विशिष्ट जीववाचक आत्मन् शब्दके मकारसे अतिरिक्त पूर्वके और उत्तरके भागोंका लोप होनेपर भी मूपदसिद्ध होता है। मंत्रके तथा इसके बीजके छान्दस होनेके कारण लोप होनेमें कोई बाधक नहीं है। इस पदका अर्थ जीवही है। वह जीव ज्ञान और आनन्दगुणवाला है और ज्ञानका आधार है अजन्मा है देह और इन्द्रियोंसे जुदा है अणु परिमाणवाला है भगवान् श्रीरामजीका शेषभूत है और भगवत्कैं-कर्यका अधिकारी है। इस प्रकार इस मंत्रराजके बीजस्थतीन पदोंसे चिदचि-द्विशिष्ट श्रीरामब्रह्मकाही बोध होता है। बीजके मध्यमें द्वितीय पद स्वरूपसे तथा अर्थसेभी प्रथम तृतीय पद और उसके वाच्य श्रीरामजी साथ स-म्बन्धकाभी बोध कहै। मंत्रार्थका अनुसन्धान करनाहोतो तब मपदवाच्यमैं जीव स्वतंत्र नहीं हूं किन्तु 'र' 'अ, से वाच्य सकल लोकके नाथ श्रीसीताराम-जीका अनन्यार्ह शेषहूं यह अर्थ बीजसे जानना चाहिये।

चौथा पद 'रामाय' यह चतुर्थ्यन्त है। इसका अर्थ अखिल जगत् के

प्रपंचस्य श्रीसीतादेव्याश्च रमयितृत्वमभीधीयते। रामपदेननित्यविभूतिनायकत्वविशिष्टोभयलिंगत्वं सार्वदिकं भगवति श्रीरामेत्युत्पादितंभवति।तदुत्तरचतुर्थ्याचास्य जीवस्य सर्वविधबन्धुत्वविशिष्टोत्कृष्टत्वशालिनोनित्यस्वामिनः स्वेष्टदेवस्य कैंकर्यं प्रतिपाद्यते। जीवानां स्वशरीरधारणं शरीरेणच यद्यत्प्रवर्तनं तत्सर्वंस्वामिनःसेवार्थमेवेतितात्पर्यम्। एतेनैतच्छरीरधारणं कैंकर्यार्थं तच्च निर्हेतुकस्वामिनः श्रीरामस्यैवेतिफलितम्। एवं नेति पंचमपदेनेतरविनियोगानर्हत्वमभिधाय भगवदनन्यशेषत्वमाविष्क्रियते। षष्ठेन म इति षष्ठ्यन्तपदेन स्वामिश्रीरघुनन्दननिरूपितमेवस्वत्वमस्मिञ्जीवे विद्यते नत्वन्यनिरूपितमितिज्ञाप्यते। पारतंत्र्यादिविशिष्टोप्ययंजीवःस्वेष्टकैंकर्यैकप्रयोजनो भगवच्छेषतया तत्परतन्त्र एव नान्यस्यकस्य चिज्जातुपारतन्त्र्यमावहतीतिसिद्धान्तोऽनेननिष्पद्यते। तन्त्रादिनाखण्डनमसाचोपायोऽपि प्रतिपाद्यते। एव श्चोपेये परमपुरुषे सएवोपाय इतिसैद्धान्तिकोऽप्यर्थोऽनुगृहीतोभवति।

और श्रीसीतादेवीके रमणकरने वाले श्रीरामही हैं। राम पदसे लीलाविभूतिऔर नित्य विभूतिके नायक नित्य निर्दोष और कल्याण गुणवाले श्रीरामजीही हैं यह सिद्ध होता है। इस पदके पश्चात् चतुर्थी विभक्ति करके अपने इष्टदेवका कैंकर्य कहा जाता है। जीवका शरीर धारण करनेका फल भगवत्सेवाही है। सिद्ध यह हुआकि श्रीरामकैंकर्यके लिये शरीर है और कैंकर्यभी स्वामीश्रीरामजीकाही करना चाहिये। इसी रीतिसे 'न' यह पंचम पद है। इस पदसे भगवदनन्य शेषता कही जाती है। षष्ठपद 'मः, यह षष्ठी विभक्ति वाला है। इस पदसे श्रीरामभगवान्काही स्वत्व इस जीवमें है अन्य किसीका नहीं यह कहा जाता है। इससे 'परतंत्र यहजीव एक अपने इष्टदेव श्रीरामजीकेही अधीन है अन्य किसीके नहीं, यह सिद्धान्त निष्पन्न होता है। तंत्र अथवा आवृत्ति करनेपर अखण्ड 'नमः, पदसे उपायका प्रतिपादनभी होता है। इससे उपेय श्रीरामजीकी प्राप्तिके उपायभी वही हैं यहभी सिद्ध होता है।

अथ च रामिति समुदितेनानन्यशेषत्वं रामायेतिसमुदितेनानन्य-भोग्यत्वं नम इति समुदितेनचानन्योपायत्वमित्यप्याप। ततोऽवगम्यते। अष्टपदपक्षेऽप्ययमेवार्थोबोध्यः।

अत्र भगवच्छरीरभूतस्यात्मनोनवविधःसम्बन्धस्तत्तत्पदार्थमहिम्नाप्रत्यपीपदञ्छास्त्रदर्शिनो देशिकवर्याः। तत्राखिलजगद्बीजवाचिबीजस्थमाद्यंपदं रक्ष्यरक्षक पितापुत्रत्वसम्बन्धावभिधत्ते। तदुत्तरतिरोहिततूर्यविभक्तिः शेषशेषित्वमुदीरयति। अनन्तरमनन्यार्हत्ववाचकाकारोऽर्पयतिभार्याभर्तृभावम्। ततोमितिपदं स्ववाच्यमात्मानमुदीरयद्दृढयति स्वस्वामिभावसम्बन्धम्। रामपदं तदव्यवहित चतुर्थीच व्याचक्षातेऽर्थस्वारस्यगम्यौ क्रमेणाधाराधेयसेव्यसेवकत्वसम्बन्धौ। एवमखण्डं नमइति पदं ब्रूते शब्दबलायातं शरीरशरीरीभावापरपर्यायमात्मात्मीयत्वसम्बन्धम्। ततोम इतिषष्ठं पदमुपदिशति भोग्यभोक्तृत्वलक्षणं विलक्षणं सम्न्बधम्। भगवन्नियाम्यस्यात्मनः परमपुरुषेणसाकमिमान् सम्बन्धान् स्वकीयाचार्यचरणसेवयावगम्य सर्वथा सद्भा-

---

इसमंत्रके बीजवर्णसे श्रीमजीको अनन्यशेषता 'रामाय' पदसे श्रीरामानन्यभोग्यत्व और 'नमः, इस पदसे श्रीरामानन्योपायत्वकाभी प्रतिपादन होता है। इस मंत्रके आठपद हैं यहभी एक पक्ष है। इस पक्षमेंभी अर्थ समान है।

इस मंत्रमें भगवान्‌के साथ सम्बन्धोंकाभी वर्णन पदार्थस्वारस्यसे होजाता है। शास्त्रदर्शी आचार्योंने ऐसेही माना है। इनमें प्रथम पदसे 'रक्ष्यरक्षकत्व, पितापुत्रत्व, इन दो सम्बन्धोंका बोध होता है। इसके आगे लुप्त चतुर्थीसे शेषशेषित्वका बोधहोताता है। द्वितीय पदसे भार्याभर्तृत्वका बोध होता है। 'राम' इससे और चतुर्थीसे 'आधाराधेयत्व' और सेव्यसेवकत्व, सम्बन्ध कहे जाते हैं। और अखण्ड नमः, पदसे शरीर शरिरित्वरूप सम्बन्ध कहाजाता है। 'मः, यह छठापद भोग्य भोक्तृत्वरूप विलक्षण सम्बन्धका भासक है। आपने आचार्य चरणोंकी सेवा करके इन सम्बन्धोंका पक्का ज्ञान करना आवश्यक है। भगवानमें सद्भाव धारण करना यही विज्ञानका

वः स्थिरीकर्तव्य इत्येतत्फलं विज्ञानस्य। एवमपिसम्बन्धेषु सेव्यसेवकभावाख्यः सम्बन्ध एव प्राधान्येन परमाचार्यसम्मतःसुगमतया ग्राह्यश्च इत्थमेतत्सर्वमाकलय्य श्रीरामांघ्रिपंकजदासभूतेनानेनजीवसेवकेनसएवदीनबन्धुः शरणागतवत्सलोऽखिलहेयप्रत्यनीक निरतिशयौज्ज्वल्यसौंदर्य्यसौगन्ध्यसौकुमार्यसौशील्यवात्सल्यसौहार्दमाधुर्यौदार्यगाम्भीर्यकारुण्यचातुर्यस्थैर्यधैर्यलावण्यनवयौवनसत्यकामत्वसत्यसन्धत्वज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याद्यपरिमितस्वाभाविकानवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणनिधिर्विश्वामित्रवसिष्ठपराशरागस्त्यसुतीक्ष्णादिमुनिजनैरनिशंतोऽष्टूय्यमानः श्रीभरतशत्रुघ्नहनुमद्विभीषणसुग्रीवादिपरिकरनिकरवन्दितचरणनलिनः परमव्योमादिशब्दभाग्दिव्यसाकेतधामामरतरुसमुद्भासितरत्नसिंहासनासीनो नवनीरदकान्तिकमनीयमनोहरःश्रीसीतासमेतोमदीयप्राणाधिकप्रियतमः श्रीरघुवरः संसेव्यः सर्वदेतिसिद्धम् ॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ।

माघमासे वैक्रमाब्दे गुणांकनवभूमिते ।
कृष्णपक्षेच सप्तम्यां जगद्गुरुजनुर्दिने ॥ १ ॥
श्रीमान् रघुवराचार्यो वाग्मी शेषमठाधिपः ।
अनयत्पूर्णतामेतद्वैदिकत्वं सतांमुदे ॥ २ ॥

फल है। इन सम्बन्धोंमेंभी सेव्य सेवक भावही अस्म-संप्रदायके परमाचार्योंको प्रधान रूपसे इष्ट है। और सुगमतयाग्राह्य है। इस प्रकार यह सब अपने हृदयमें विचारकर श्रीरामचरणके दासभूत इस जीवसेवकको वही दीनबन्धु शरणागतवत्सल मुलोक्तगुणयुक्त [मूलग्रंथमेंजो भगवान् श्रीरामका स्वरूप वर्णित है तदनुसार]श्रीसीतासमेत भगवान श्रीरघुनाथजीही सर्वदा संसेव्य हैं यह सिद्ध हुआ।

इस श्रीराममंत्रस्य वैदिकत्वको विक्रम संवत् १९९३ के माघ मास कृष्ण पक्षकी सप्तमीको अर्थात् जगद्गुरु श्री रामानन्द भगवानकी अवतारतिथिको शेषमठ शींगडाके अधिपति और वाग्मी स्वामी श्रीरघुवराचार्यजी सज्जन वैष्णवोंकी प्रसन्नताके लिये लिखकर पूर्ण किया।

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

॥ ॥

इतिश्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यजगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दमुनीन्द्रान्वय-
प्रतिष्ठितसप्तत्रिंश द्वारपीठपरिगणितप्रधानपीठपतिश्रीमदभयानन्द
स्वामिवंशाम्बुधिपूर्णचन्द्रेण श्रीबालाजीस्थानाभिजनेन, न्यायमीमां-
सोपाध्यायेन तर्कवेदान्ततीर्थेन वेदान्तशिरोमणिदर्शननिधिना श्री
द्वारकाप्रान्तवर्तिशींगडास्थशेषमठाधिपतिना वेदान्तकेसरिश्रीरघुव-
राचार्येण विरचितं श्री राममंत्रस्य वैदिकत्वं समाप्तम् ।

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

॥ ॥

रूप सम्ब

न्धका भासक है

ज्ञान करना श्र